ISSN No. 2582-9548

nbt.india

एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष - 7 • अंक - 2 • मार्च - अप्रैल 2022 • मूल्य ₹40.00

शौर्य विशेषांक

- 1961 : चीन से भिड़ंत और भूपेन हाजरिका
- भारतीय वीरों की शौर्यगाथा बाना पोस्ट
- सुनारी से श्रीलंका : एक शहीद गाथा
- भारतीय वायुसेना : नवाचार का अभिनंदन

सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

"राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार"

- ❖ वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- ❖ जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- ❖ संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- ❖ संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- ❖ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- ❖ हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- ❖ समसामयिक जानकारी

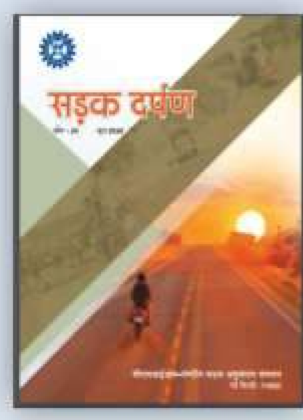

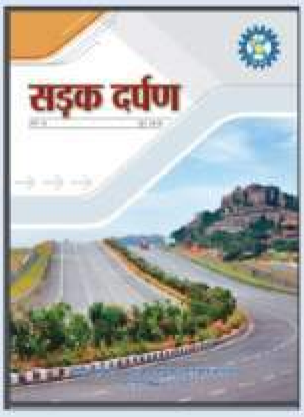

संपर्क -

संपादक, 'सड़क दर्पण'

राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली- 110025

दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165

ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/content/sadak-darpan-hindi-magazine**

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अतुल वर्धन

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-7; अंक-2; मार्च-अप्रैल, 2022

>> शौर्य विशेषांक <<

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
लेख	**1961 : चीन से भिड़ंत और भूपेन हाजरिका** —*कविता शइकीया राजखोआ*	4
आलेख	**भारतीय वीरों की शौर्यगाथा बाना पोस्ट**—*विनीत शर्मा*	8
आलेख	**सुनारी से श्रीलंका : एक शहीद गाथा**—*बजरंगलाल जेठू*	10
प्रशिक्षण	**भारतीय सैन्य अकादमी, जहाँ फौलाद तैयार करती है सेना**—*जयसिंह रावत*	12
सिनेमा	**सेना के शौर्य, पराक्रम की गाथा फिल्म 'हकीकत'**—*प्रदीप सरदाना*	16
आलेख	**लांस नायक अल्बर्ट एक्का जिसने गंगासागर में दिखाई थी वीरता**—*मनोज कुमार कपरदार*	20
लेख	**परमवीर चक्र विजेता कैप्टन विक्रम बत्रा**—*सुदर्शन वशिष्ठ*	22
नवाचार	**भारतीय वायुसेना : नवाचार का अभिनंदन**—*ए.के. गांधी*	24
आलेख	**एनसीसी की यात्रा : एक सर्वेक्षण**—*रेनू सैनी*	27
शहादत	**प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ : जनरल बिपिन रावत**—*मोहन शर्मा*	30
लेख	**एनसीसी कैडेट को बहादुरी के लिए अशोक चक्र**—*विजय कुमार 'शाश्वत'*	31
शब्द ज्ञान	**आओ भारतीय भाषाएँ सीखें**	32
लेख	**गुमनाम शहादत का महानायक रविंद्र कौशिक** —*डॉ. कृष्णकुमार 'आशु'*	34
शौर्य	**उत्तरी राजस्थान में सैन्य शौर्य का प्रतीक : द वार ऑफ सैंड ड्यून, नग्गी**—*कैप्टन डॉ. अरुण कुमार शहैरिया*	37
आलेख	**तीनों सेनाओं में शौर्य दिखाने वाले योद्धा : कर्नल पृथीपाल सिंह गिल**—*कमलेश पाण्डेय*	40
लेख	**देश-सेवा में लगी पाँचवीं पीढ़ी**—*मोहन शर्मा*	41
विरासत	**बेजोड़ लता मंगेशकर**—*पंडित कुमार गंधर्व*	42
पुस्तक समीक्षा		44
पुस्तकें मिलीं		56
साहित्यिक गतिविधियाँ		58
पाठकीय प्रतिक्रिया		64

उत्तर-प्रौद्योगिकी काल और मूल्य आधारित शिक्षा

उत्तर-प्रौद्योगिकी काल की कई प्रवृत्तियों में से एक मुख्य प्रवृत्ति यह है कि वह प्रायः सभी परंपरागत मूल्यों से बाहर निकल रहा है। नई प्रौद्योगिकी, संचार और तकनीक के प्रयोग की प्रचुरता ने व्यक्ति के जीवन, चिंतन और व्यवहार को प्रभावित किया है, फलतः व्यक्ति के व्यवहार में खुलेपन और स्वकेंद्रितता की प्रवृत्ति विकसित हुई है। व्यक्ति का जीवन, मूल्यों और वर्जनाओं से मुक्त हो रहा है। यह स्थिति सभी देशों में देखने को मिल रही है। सभी देशों में एक नया वर्ग विकसित हो रहा है, जिसकी सोच और जीवन-शैली वर्जनाओं को नकार रही है। यह वर्ग अपने देश की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, इतिहास, परंपरा, रहन-सहन, आचार-विचार और पंचांग से कट रहा है, यह भी डर है कि कहीं आगे चलकर यह वर्ग अपनी मूल पहचान न खो दे। इस वर्ग का आचरण समाज के अन्य वर्गों को तेजी से प्रभावित कर रहा है। आल्विन टाफलर ने अपनी पुस्तक 'फ्यूचर शॉक' में इस प्रवृत्ति और संभावना की गहराई से चर्चा की है। टाफलर ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'द थर्ड वेव' में कहा कि भविष्य का अलग ही व्यक्ति होगा। नई आचरण संहिता होगी। रोजगार, जीवन-शैली कार्य की नैतिकता, जीवन की मान्यताएँ, आर्थिक और राजनीतिक संरचना, उनकी चुनौती और इन सबकी टकराहट होगी। संपूर्ण मूल्य व्यवस्था चकना-चूर हो गई है तथा परिवार, चर्च एवं राज्य जैसी नैतिक संस्थाओं के स्वरूप भी डगमगा गए हैं। पुराने सूत्र, पुरानी विचारधाराएँ, पुरातन सोच व सिद्धांत आज की दुनिया में कहीं भी खरे नहीं होते उतरते। तकनीक से उत्पन्न नए मूल्य, नई जीवन-शैली, संवाद एवं संचार की नई प्रणाली, हम पर दबाव डालती है कि हम मान्यताओं और आवश्यकताओं का पुनः वर्गीकरण करें।

तंत्रशाही ने अपनी उत्पादन क्षमता और उपभोक्ता की रुचि को नियंत्रित करने संबंधी अपनी चालाकीपूर्ण नीतियों के द्वारा एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जिसका संबंध मात्र दैहिक समागम हो गया है। इन सब का समाज और उसकी बनावट पर गहरा असर पड़ा है। शिक्षा भी उत्तर-प्रौद्योगिकी काल के प्रभाव से अछूती नहीं है। इस काल में शिक्षा संबंधी परंपरागत धारणाएँ बदली हैं। शिक्षा का स्वरूप बदला है, शिक्षा के साधन बदले हैं, शिक्षा की दशा तथा दिशा बदली है, शिक्षा की प्राथमिकताएँ बदली हैं, बाजारवाद और उपभोक्तावाद शिक्षा पर हावी हुए हैं। इन सब का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि विद्यालय जो छात्र में मूल्य और संस्कारों को विकसित करने के प्रमुख स्थल है, ऐसा कर पाने में असफल हो रहे हैं।

वर्तमान में शिक्षण संस्थाओं में जो परिवेश विकसित हो रहा है, वह मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों से शून्य है। शिक्षण संस्थाओं में अपराधवृत्ति, स्थापित नियमों की अवहेलना का भाव, यौन शोषण, नशीली चीजों के प्रयोग में वृद्धि हो रही है। अमेरिका में कुछ वर्ष पूर्व हायर सेकेंड्री में अध्ययन करने वाले छात्रों का एक सर्वे 'जॉनी गलत और सही का उत्तर क्यों नहीं कर पाता' नाम से प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका में लिखा था कि, 'स्कूलों में प्रतिमाह 5.26 लाख हमले होते हैं, 30 लाख अपराध सलाना होते हैं, बच्चे हथियार लेकर स्कूल जाते हैं, 1/3 अध्यापक नौकरी छोड़ने को तैयार हैं, बच्चे विश्राम कक्षों में नहीं आते क्योंकि उन्हें स्वयं के लुटने का डर है'। भारत की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है। यहाँ भी किशोरवय के छात्रों में वर्जनाएँ शिथिल पड़ रही हैं।

मूल्याधारित शिक्षा के अभाव में, समाज के हिंसक होने और समाज की आधारभूत संस्थाओं जैसे परिवार, विवाह आदि के टूटने का सिलसिला प्रारंभ हो गया है। इन सब भयावह स्थितियों को देखते हुए अमेरिका के एक राज्य, न्यूजर्सी की विधानसभा में कुछ वर्ष पूर्व एक विधेयक प्रस्तुत किया गया, जिसमें कहा गया कि स्कूली पाठ्यक्रम में महात्मा गांधी, मदर टेरेसा और मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) के अहिंसा सिद्धांत को सम्मिलित किया जाए। विधेयक प्रस्तुत करने वाले सदस्यों का विचार था कि इन महापुरुषों की जीवनी पढ़ाए जाने से छात्रों में अच्छे संस्कार पनपेंगे।

उत्तर-प्रौद्योगिकी काल की भयावहता को देखते हुए सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में मूल्यों की स्वीकार्यता, मानव संस्कृति और उसकी उपलब्धियों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है तथा भविष्य में सुंदर और अधिक न्यायप्रिय समाज के लिए मूल्यों का संवर्धन आवश्यक है। मूल्यों के विचार को हम शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। मूल्य शिक्षा के साथ पूरी तरह जुड़े हैं। तकनीक का प्रयोग हमारे जीवन में कितना भी बढ़ जाए और उसके कारण व्यक्तिगत और सामाजिक रिश्तों के समीकरण कितने भी प्रभावित हों; वह सद्‌विचार और सद्‌जीवन की गारंटी नहीं है।

वस्तुतः श्रेष्ठ जीवन की तलाश में ही मूल्य हैं। मूल्य अहम् (मैं) से वयम् (हम) (अर्थात मैं से आगे परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व) तक पहुँचने के मार्ग के पथ-प्रदर्शक हैं। हम जिन गुणों को सामान्य व्यवहार में वरीयता देते हैं, वे मूल्य हैं। हमारा सहज और प्राकृत व्यवहार सामान्य व्यवहार है, पर जब हम अपने व्यवहार को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, उस समय जिन गुणों को हम वरीयता देते हैं, वे मूल्य हैं। मूल्यों को जनसामान्य की उदात्त मान्यताएँ भी कह सकते हैं। अपनी प्रकृति और स्वरूप में मूल्य सात्विक और मंगलकारी होते हैं तथा लोक-कल्याण की भावना और विचारों में उदारता मूल्यों की कसौटी समझी जा सकती है।

महात्मा गांधी मानते हैं कि शिक्षा यदि हमें मनुष्य नहीं बनाती तो उस शिक्षा का हमारे जीवन में कोई महत्व नहीं है। गांधीजी कहते हैं, शिक्षा

का साधारण अर्थ अक्षरज्ञान ही है। लोगों को लिखना, पढ़ना, हिसाब करना सीखना, यह मूल अथवा प्राथमिक शिक्षा कहलाती है। उसे माँ-बाप के प्रति कैसा बरताव करना है, अपनी स्त्री के प्रति कैसा बरताव करना है, बच्चों के साथ कैसे चलना है, जिस गाँव में वह बसता है वहाँ कैसा रीत-व्यवहार रखना है, इस सब का ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और पालता है, पर उसे सही करना नहीं आता। इस मनुष्य को अक्षरज्ञान देकर आप क्या करना चाहते हैं। उसके सुख में क्या वृद्धि करेगा? क्या उसकी झोंपड़ी पर यह उसकी स्थिति पर असंतोष उपजाना है? ऐसा करना ही है तो भी आपको उसे अक्षर-ज्ञान देने की जरूरत नहीं। (गांधीजी : हिंद स्वराज, अनुवाद : जितेन्द्र बजाज) स्पष्ट है, मूल्य अक्षर-ज्ञान (शिक्षा) से अधिक महत्व के हैं, शिक्षित और अशिक्षित होने की तुलना में नैतिक होना और उसके अनुसार आचरण करना अधिक महत्व का है।

गांधी की दृष्टि में व्यक्ति को साक्षर करने वाली शिक्षा की अपेक्षा जीवन मूल्यों का महत्व मनुष्य के जीवन में अधिक है। यदि शिक्षा में मूल्य को सम्मिलित नहीं किया गया तो शिक्षा व्यक्ति को व्यक्तिगत अथवा सामाजिक कल्याणकारी उद्देश्यों को प्राप्त करने की लिए प्रेरित नहीं कर सकती, वस्तुतः मूल्यहीनता की स्थिति में 'शिक्षा' को शिक्षा कहना ही व्यर्थ है। यही कारण है कि 1938 में गठित बेसिक शिक्षा वर्धा योजना से लेकर कोठारी आयोग (1964-66) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 तक सभी आयोगों के प्रतिवेदनों और अनुशंसाओं में किसी-न-किसी रूप में मूल्य शिक्षा पर जोर दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कहा गया कि इस समय मूल्यों में निरंतर कमी तथा बढ़ते हुए सनकीपन के कारण पाठ्यक्रम में परिवर्तन आवश्यक हो गया है ताकि शिक्षा द्वारा सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को विकसित किया जा सके। इसमें यह भी स्वीकार किया गया कि जीवन मूल्य की इस शिक्षा का स्रोत हमारी संस्कृति, राष्ट्रीय लक्ष्य तथा विश्वबोध होगा। 'विद्यालयीन शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000' में कहा गया, "ऐसा लगता है कि विद्यालयीन शिक्षा ने भाषा में मूलभूत मूल्यों के संबंध में तटस्थता का भाव विकसित कर लिया है और समुदाय के पास या तो समय नहीं है अथवा उसकी यह रुचि ही नहीं है कि वह सही भावना के साथ धर्मों के बारे में जाने। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय विद्यालयीन पाठ्यचर्या में मूलभूत मूल्यों को अंतर्निहित किया जाए तथा देश के सभी प्रमुख धर्मों के संबंध में चेतना को एक केंद्रीय घटक के रूप में शामिल किया जाए।"

नई शिक्षा नीति में नैतिकता तथा मानवीय और संवैधानिक मूल्यों को शिक्षा को मूलभूत सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया है। शिक्षा नीति में कहा गया है कि, 'शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इनसानों का विकास करना है, जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हों, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति नैतिक मूल्य आधारभूत से हों। (रा. शि. नीति पृ. 6) भारतीय संसद ने शिक्षा में सुधार पर विचार करने के लिए 1996 में एस.बी. चव्हाण की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति ने भी मूल्य आधारित शिक्षा और तद्नुसार पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। एस.बी. चव्हाण समिति ने मूल्यों की शिक्षा के संबंध में कहा, "आमतौर पर यह महसूस किया गया कि ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक विभिन्नताओं के बावजूद कुछ सामान्य तत्व हैं, जो पूरे देश को जोड़ते हैं। प्राचीनकाल से ही विभिन्न धर्म, पंथों के महान ऋषियों और चिंतकों ने कुछ शाश्वत मूल्यों की बात कही। ये मूल्य हमारे बच्चों को सिखाए जाने चाहिए।"

और भी 'सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा' सार्वभौमिक रूप से बुनियादी मूल्य हैं। ये क्रमशः किसी मनुष्य के व्यक्तित्व के बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक पक्षों का संकेत करते हैं। यही पाँचों मूल्य वे आधारशिला हैं जिस पर शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। ये पाँच मूल्य क्रमशः शिक्षा के पाँच उद्देश्यों—ज्ञान, हुनर (कला), संतुलन, दृष्टि और पहचान से सीधे संबंधित हैं।

मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता पर अपनी सम्मति देते हुए 2020 में सर्वोच्च न्यायालय ने भी 'अरुणा राय व अन्य बनाम भारत सरकार व अन्य' मुकदमे में निर्णय देते हुए कहा कि इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि पिछले पाँच दशकों में हर स्तर पर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित सामाजिक प्रणाली की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए हम भौतिकवादी समाज में बदलते जा रहे हैं। कोई इससे भी इनकार नहीं कर सकता कि सेक्युलर समाज में नैतिक मूल्यों का महत्व सर्वोपरि है। जिस समाज में कोई नैतिक मूल्य न हो, वहाँ न सेक्युलर बचेगा, न सामाजिक व्यवस्था। नैतिक मूल्यों के बिना न सेक्युलर समाज बचेगा, न ही लोकतंत्र। जैसा समिति (एस.बी. चव्हाण) ने नोट किया है कि व्यक्ति में गुणों को ही मूल्य कहते हैं, और ये क्षीण होने लगें तो परिवार, समाज और देश के संपूर्ण बिखराव का कारण बन जाएँगे। जिस समाज में धन, सत्ता और पद के लिए सामाजिक और नैतिक मूल्य निरंतर गायब होते जा रहे हों—क्या वहाँ शुरू से ही एक ठोस सामाजिक आधार नहीं होना चाहिए ताकि आदमी वयस्क होकर हर तरह की उग्रता, कुविचार, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार और शोषण के खिलाफ संघर्ष कर सके? स्वाभाविक रूप से इसका उत्तर होगा—हाँ।

मूल्य आधारित शिक्षा के साथ धर्म की शिक्षा के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' (1909) में धर्म-शिक्षा के संबंध में जोर देते हुए लिखा, "बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। धर्म की शिक्षा के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।" गांधीजी के विचार में धर्म-शिक्षा और मूल्य-शिक्षा में कोई अंतर नहीं है। उनका मत था कि अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्मों के अध्ययन से भी कोई यह समझ सकेगा कि सभी धर्मों में चट्टानी एकता है और भिन्न-भिन्न पंथ व विश्वासों की धूल-गर्द के भीतर स्थित सार्वभौम और संपूर्ण सत्य की झलक पा सकेगा।

जिस तेजी से उत्तर-प्रौद्योगिकी युग में मूल्यों का क्षरण हो रहा है, वह आगे चलकर समूची सभ्यता को ही ध्वस्त कर देगा। मूल्यविहीन समाज अधिक समय तक अपने को एकता के सूत्र में बाँधकर नहीं रख सकता। जब समाज की सभी संस्थाएँ ध्वस्त हो जाएँगी तो 'सत्य, शिव और सुंदर' के प्रेरक विचार का क्या होगा? समाज में सब एक-दूसरे के विरोध में खड़े नजर आएँगे। यह स्थिति सभी के लिए घातक और विनाशकारी होगी।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

1961 : चीन से भिड़ंत और भूपेन हाजरिका

भारत-चीन युद्ध के कुछ महीने पहले असम के सबसे प्रिय शिल्पी विश्व वरेण्य संगीतकार डॉ. भूपेन हाजरिका (भूपेन दा) असम के तेजपुर शहर में एक संगीत अनुष्ठान में भाग लेने आए थे। तेजपुर, भारतीय सेना का पूर्वोत्तर भारत का एक मुख्य केंद्र है। उस संगीत अनुष्ठान में देश के भिन्न प्रांतों के कर्मरत सैन्य अफसर व जवान उपस्थित थे। उन अफसरों ने भूपेन दा को बोमडिला में जवानों के बीच एक संगीत अनुष्ठान करने के लिए आमंत्रित किया था, किंतु व्यस्तता के कारण वह अनुष्ठान करना उनके लिए संभव नहीं हुआ। परंतु जब युद्ध शुरू हो गया तब भूपेन दा को बहुत अफसोस हुआ। तब वे कलकत्ता में थे। बाद में भूपेन दा ने 'कत जोवानर मृत्यु हल, कार जीवन यौवन गल' गीत लिखा जिसमें इस युद्ध में शहीद जवानों की दर्द भरी दास्ताँ महसूस कर सकते हैं।

कविता शइकीया राजखोआ

जन्म : 02 अक्तूबर, 1977

शिक्षा : बी.एड., एम.एससी.

संप्रति : विज्ञान शिक्षिका।

प्रकाशन : अदम्य संग्रामी कनकलता बरुआ, एकाजित एकुकि कविता (काव्य संकलन)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9101773655

ई-मेल : kabitasaikia1977@gmail.com

सन् 1959 के तिब्बती विद्रोह के बाद जब भारत ने तिब्बती भिक्षु दलाई लामा को शरण दी, तब भारत-चीन सीमा पर हिंसक घटनाओं की शृंखला शुरू हो गई। आजादी के महज 15 साल बाद ही अक्तूबर-नवंबर 1962 में भारत और चीन के बीच हुआ। इस युद्ध का एक मुख्य कारण था—विवादित हिमालय सीमा। युद्ध के दौरान वर्तमान के अरुणाचल प्रदेश, असम के अंतर्गत था। तब यह NEFA (नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) नाम से प्रसिद्ध था।

युद्ध के कारण

सन् 1947 में भारत की स्वाधीनता के पश्चात और 1949 में चीनी गृहयुद्ध के बाद पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना (PRC) की स्थापना के साथ बहुत बड़ा परिवर्तन देखा गया। नई भारत सरकार के लिए सबसे बुनियादी नीतियाँ चीन के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के प्राचीन मैत्रीपूर्ण संबंधों को पुनर्जीवित करने की थी। नवनिर्मित पी.आर.सी. को राजनयिक मान्यता प्रदान करने वाले पहले राष्ट्रों में से एक था भारत।

उस समय, चीनी अधिकारियों ने नेहरू के दावों की कोई निंदा नहीं की या अक्साई चिन पर नेहरू के नियंत्रण की खुली घोषणा का कोई विरोध नहीं किया। 1956 में, चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एनलाई ने कहा कि उनका भारतीय नियंत्रित क्षेत्र पर कोई दावा नहीं है। बाद में उन्होंने तर्क दिया कि अक्साई चिन पहले से ही चीनी अधिकार क्षेत्र में था और कार्टनी-मैकडोनाल्ड लाइन वह रेखा थी जिसे चीन स्वीकार कर सकता था। चाऊ ने बाद में सलाह दी कि चूँकि सीमा अनिर्धारित थी और किसी भी चीनी या भारत सरकार के बीच संधि द्वारा परिभाषित नहीं की गई थी, भारत सरकार अक्साई चिन की सीमाओं को एकतरफा परिभाषित नहीं कर सकती थी।

सन् 1950 में चीनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLA) ने तिब्बत पर आक्रमण किया। तिब्बत को चीनी सरकार चीन का

हिस्सा मानती थी। बाद में चीनियों ने 1956-67 में एक सड़क बनाकर और अक्साई चिन में सीमा चौकियों को बनाकर अपना प्रभाव बढ़ाया। सड़क के पूरा होने के बाद भारत को पता चला। भारत ने इन कदमों का विरोध किया और एक स्थिर चीन-भारतीय

सीमा सुनिश्चित करने के लिए एक राजनयिक समाधान की तलाश करने का फैसला किया। भारतीय स्थिति के बारे में किसी भी संदेह को हल करने के लिए, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में घोषणा की कि भारत मैकमोहन रेखा को अपनी आधिकारिक सीमा मानता है। चीनियों ने इस बयान पर कोई चिंता व्यक्त नहीं की, और 1961 तथा 1962 में चीन की सरकार ने जोर देकर कहा कि भारत के साथ कोई सीमांत मुद्दा नहीं उठाया जाना चाहिए।

सन् 1954 में जवाहरलाल नेहरू ने भारत की सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित और सीमांकित करने के लिए एक विज्ञापन लिखा। पिछले भारतीय दर्शन के अनुरूप, भारतीय मानचित्रों ने एक सीमा दिखाई, जो कुछ स्थानों पर मैकमोहन रेखा के उत्तर में स्थित थी। चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एनलाई ने नवंबर 1956 में फिर से चीनी आश्वासनों को दोहराया कि पीपुल्स रिपब्लिक का भारतीय क्षेत्र पर कोई दावा नहीं है, हालाँकि आधिकारिक चीनी मानचित्रों ने 120,000 वर्ग किलोमीटर (46,000 वर्ग मील) क्षेत्र को भारत द्वारा चीनी के रूप में दावा किया है। उस समय बनाए गए सी.आई.ए. दस्तावेजों से पता चला कि नेहरू जी ने बर्मी प्रधानमंत्री बा स्वे की उपेक्षा की थी जब उन्होंने चाऊ के साथ बात करते समय नेहरू जी को सतर्क रहने की चेतावनी दी थी। उनका यह भी आरोप है कि चाऊ ने जान-बूझकर नेहरू जी से कहा कि भारत के साथ कोई सीमा विवाद नहीं है।

सन् 1954 में चीन और भारत ने शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धांतों पर बातचीत की, जिसके द्वारा दोनों राष्ट्र अपने विवादों को निपटाने के लिए सहमत हुए। भारत ने एक सीमांत मानचित्र प्रस्तुत किया जिसे चीन ने स्वीकार कर लिया और इस दौरान 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' (भारतीय और चीनी भाई हैं) का नारा लोकप्रिय था।

संबंधों में इस स्पष्ट प्रगति को एक बड़ा झटका लगा, जब 1959 में नेहरू जी ने उस समय तिब्बती धार्मिक नेता, 14वें दलाई लामा को समायोजित किया। दलाई लामा ने चीनी शासन के खिलाफ स्वतंत्र तिब्बत के लिए विद्रोह किया। उन्होंने ल्हासा से भागकर तवाँग होते हुए भारत में शरण ली। इससे चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष, माओत्से तुंग नाराज हो गए। दोनों राष्ट्रों के बीच बातचीत फिर से शुरू हुई, लेकिन कोई प्रगति नहीं हुई।

मैकमोहन रेखा की उनकी गैर-मान्यता के परिणामस्वरूप, चीन के मानचित्रों ने उत्तर-पूर्व सीमा क्षेत्र (एनईएफए) और अक्साई चिन दोनों को चीनी क्षेत्र दिखाया। 1960 में, चाऊ एनलाई ने अनौपचारिक रूप से सुझाव दिया कि भारत नेफा पर दावों को वापस लेने के बदले में अक्साई चिन पर अपना दावा छोड़ दे। अपनी घोषित स्थिति का पालन करते हुए, नेहरू जी का मानना था कि इन क्षेत्रों में से किसी पर भी चीन का वैध दावा नहीं था, और इस प्रकार वह उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

सन् 1961 की शुरुआत में, नेहरू जी ने जनरल बी.एम. कौल को सेना प्रमुख नियुक्त किया। कौल ने सामान्य कर्मचारियों को पुनर्गठित किया और विवादित क्षेत्र पर गश्त करने का विचार किया, जिसका विरोध किया गया। हालाँकि नेहरू जी ने अभी भी सैन्य खर्च बढ़ाने या युद्ध की तैयारी करने से इनकार कर दिया था।

सन् 1961 की गर्मियों में, चीन ने मैकमोहन रेखा पर गश्त शुरू की। चीनी सैनिकों ने भारतीय प्रशासित क्षेत्रों के कुछ हिस्सों में प्रवेश किया और ऐसा करने में भारतीयों को बहुत गुस्सा आया। हालाँकि, चीनी यह नहीं मानते थे कि वे भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ कर रहे हैं। जवाब में भारतीयों ने चीनी सैनिकों के पीछे चौकी बनाने की नीति शुरू की ताकि उनकी आपूर्ति में कटौती की जा सके और उन्हें चीन लौटने के लिए मजबूर किया जा सके।

थांग ला में आमना-सामना

जून 1962 में, भारतीय सेना ने थांग ला रिज के दक्षिण में 'नमका चू' घाटी में 'ढोला पोस्ट' नामक एक चौकी (पोस्ट) की स्थापना की।

ढोला पोस्ट मानचित्र-चिह्नित मैकमोहन रेखा के उत्तर में स्थित है, लेकिन उन लकीरों के दक्षिण में है जिसके साथ भारत ने मैकमोहन रेखा को चलाने के लिए व्याख्या की है।

10 जुलाई, 1962 को 350 चीनी सैनिकों ने चुशूल (मैकमोहन रेखा के उत्तर में) में एक भारतीय चौकी को घेर लिया, लेकिन लाउडस्पीकर के माध्यम से एक गरमागरम बहस के बाद

वापस चले गए। 22 जुलाई को विवादित क्षेत्र में पहले से स्थापित चीनी सैनिकों को पीछे धकेलने की अनुमति देने के लिए फॉरवर्ड पॉलिसी को बढ़ा दिया गया। जबकि भारतीय सैनिकों को पहले केवल आत्मरक्षा में गोली चलाने का आदेश दिया गया था, बाद में सभी पोस्ट कमांडरों को धमकी देने पर चीनी सेना पर गोली चलाने का आदेश दिया गया। अगस्त महीने में चीनी सेना ने मैकमोहन रेखा पर अपनी युद्धक तैयारी में सुधार किया और गोला-बारूद, हथियार और ईंधन का भंडार शुरू किया।

थांग ला में बलों की कमान ब्रिगेडियर जॉन परशुराम दलवी ने सँभाली। नेविल मैक्सवेल के अनुसार, भारतीय रक्षा मंत्रालय के सदस्य भी स्पष्ट रूप से थांग ला में लड़ाई की वैधता से चिंतित थे। 04 अक्तूबर को कौल ने थांग ला रिज के दक्षिण में संरक्षित क्षेत्रों के लिए कुछ सैनिकों को नियुक्त किया। कौल ने खोई हुई ढोला चौकी में फिर से प्रवेश करने से पहले रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण स्थान, युमत्सो ला को सुरक्षित करने का फैसला किया। थांग ला की ओर बढ़ने वाले भारतीय सैनिकों को पहले की अनुभवहीन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था और फुफ्फुसीय एडिमा (पल्मोनरी एडिमा) से दो गोरखा सैनिकों की मृत्यु हो गई।

इस बिंदु पर, भारतीय सैनिक मोर्टार और मशीन गन की आग से चीनियों को पीछे धकेलने की स्थिति में थे। ब्रिगेडियर दलवी ने गोली नहीं चलाने का विकल्प चुना, क्योंकि इसका मतलब राजपूतों को बरबाद करना होता जो अभी भी चीनी क्षेत्र में थे। वे असहाय होकर चीनियों को दूसरे हमले के लिए तैयार होते हुए देख रहे थे। दूसरे चीनी हमले में, भारतीयों ने स्थिति निराशाजनक महसूस करते हुए पीछे हटना शुरू कर दिया। भारतीय गश्ती दल के 25 जवान हताहत हुए और चीनी 33। भारतीयों के पीछे हटने पर चीनी सैनिकों ने अपनी आग पर काबू पा लिया, और फिर भारतीय मृतकों को सैन्य सम्मान के साथ दफनाया, जैसा कि पीछे हटने वाले सैनिकों ने देखा। युद्ध में भारी क्षति की यह पहली घटना थी। इस हमले के भारत के लिए गंभीर निहितार्थ थे और नेहरू जी ने इस मुद्दे को सुलझाने की कोशिश की, लेकिन 18 अक्तूबर तक यह स्पष्ट हो गया कि चीनी एक बड़े पैमाने पर हमले की तैयारी कर रहे थे।

मैकमोहन रेखा का पूर्वी प्रांत

मैकमोहन रेखा के पूर्वी प्रांत नेफा के तवाँग शहर को चीनी अपना मानते थे। पीएलए ने 17 नवंबर को तवाँग शहर को कब्जे में लेने के बाद 'से ला' और 'बोमडिला' के पास भारतीय सेना पर हमला कर दिया। इन जगहों का बचाव भारतीय सेना के चौथे इन्फेंट्री डिवीजन द्वारा किया गया था। राइफलमैन जसवंत सिंह रावत 17 नवंबर को नूरानांग की लड़ाई के दौरान चौथी बटालियन, चौथी गढ़वाल राइफल्स में सेवारत थे। एक चीनी मीडियम मशीन गन (MMG) भारतीय ठिकानों पर सटीक गोलीबारी कर रही थी। राइफलमैन जसवंत सिंह रावत, लांस नायक त्रिलोक सिंह नेगी और राइफलमैन गोपाल सिंह गुसाईं के साथ मिलकर एम.एम.जी. को वश में करने के लिए स्वेच्छा से आगे आए, पर चीनी सैनिक को रोक नहीं पाए।

सड़क मार्ग से हमला करने के बजाय, पीएलए बलों ने एक पहाड़ी रास्ते से संपर्क किया, और उनके हमले ने एक मुख्य सड़क को काट दिया और 10,000 भारतीय सैनिकों को अलग कर दिया। उन लोगों के युद्ध के कौशल बिलकुल अलग थे। चीनी सैनिक भेड़-बकरियों के सींग पर टॉर्च जलाकर भेज देते थे। भारतीय सेना उसे शत्रु समझकर गोलियाँ बरसा देते, पर गोली का निशाना बकरियाँ होती थीं। जब चीनी सेना सामने आती तब तक सारी गोलियाँ खत्म हो जातीं। कुछ भी करने का अवसर नहीं मिलता। इस तरह 'से ला'

के उच्च भूमि पर कब्जा कर लिया गया और इस कमांडिंग स्थिति पर हमला करने के बजाय, चीनी ने थेम्बैंग पर कब्जा कर लिया, जो 'से ला' के लिए एक आपूर्ति मार्ग था।

18 नवंबर को पश्चिमी क्षेत्र पर, पीएलए बलों ने चुशूल के पास एक पैदल सेना का हमला कर दिया। अधिकांश क्षेत्रों में धुंध के बावजूद उनका हमला सुबह 4:35 बजे शुरू हुआ। 5:45 बजे चीनी

“पूर्वी प्रांत में जब चीनी सेना बोमडिला तक कब्जा करके तेजपुर की तरफ बढ़ी तब सरकार ने नागरिकों को तेजपुर छोड़कर जाने का निर्देश जारी किया। जरूरी कागजात नष्ट कर दिए गए। बैंक का पैसा पदुम पोखर में गिरा दिया। भारतीय प्रधानमंत्री नेहरू जी ने असम के लिए अफसोस किया। तब भारतीय सेना ने अपने आप परिस्थिति को सँभाला।”

सैनिक गुरुंग हिल पर भारतीय सैनिकों की दो प्लाटून पर हमला करने के लिए आगे बढ़े। भारतीयों को नहीं पता था कि क्या हो रहा था, क्योंकि संचार मृत थे। जैसे ही एक गश्ती दल भेजा गया, चीनी सेना ने हमला कर दिया। भारतीय तोपखाने चीनी सेना को रोक नहीं सके। सुबह 9:00 बजे तक, चीनी सेना ने सीधे गुरुंग हिल पर हमला किया और भारतीय सेना स्पांगगुर गैप से पीछे हट गई।

जे.एन.चौधरी

पूर्वी प्रांत में जब चीनी सेना बोमडिला तक कब्जा करके तेजपुर की तरफ बढ़ी तब सरकार ने नागरिकों को तेजपुर छोड़कर जाने का निर्देश जारी किया। जरूरी कागजात नष्ट कर दिए गए। बैंक का पैसा पदुम पोखर में गिरा दिया। भारतीय प्रधानमंत्री नेहरू जी ने असम के लिए अफसोस किया। तब भारतीय सेना ने अपने आप परिस्थिति को सँभाला।

सरकार की मनःस्थिति को भाँपकर उप-सेनाध्यक्ष जे.एन. चौधरी ने सरकारी निर्देश के बिना कार्रवाई शुरू कर दी। वह दिल्ली से तुरंत तेजपुर पहुँचे और जितने जवान तेजपुर में थे, उन सबको लेकर बोमडिला की ओर चल पड़े। उन लोगों ने आगे बढ़ते हुए चीनी सेना को रोका। बोमडिला से चीनी लौट गए। उप-सेनाध्यक्ष जे.एन. चौधरी के इस साहस ने चीनियों को नेफा से खदेड़ दिया। भारतीय सेना की एकनिष्ठ देशभक्ति और साहस के कारण आज भी शत्रुपक्ष डरते हैं।

अंत में भारतीय सेना के इसी साहस, त्याग, निष्ठा और देशभक्ति को देखकर डॉ. भूपेन हाजरिका (भूपेन दा) जी ने गीत लिखा था—

प्रति जोवान रक्तरे बिंदु	(प्रति जवान रक्त के बिंदु)
हल साहसर अनंत सिंधु	(बने साहस के अनंत सिंधु)
सेइ साहसर दुर्जेय लहरे	(इन साहस के दुर्जेय लहरों ने)
जाचिले प्रतिज्ञा जयरे	(दिया विजय दिलाने का वचन हमें)

युद्ध से पहले तक भूपेन दा, माओत्से तुंग के आदर्शवाद को मानते थे, पर नेफा में चीनी सेना के अत्याचार ने जो रूप दिखाया, उससे उन्होंने उस आदर्शवाद को त्याग दिया। गीत के अंतिम पंक्ति में उन्होंने लिखा—

आजि कामेङ सीमांतत देखिलो	(आज कामेङ सीमांत में जो देखा)
देखि शत्रुर पशुरत्व चिनिलो	(इससे शत्रुओं के पशुत्व को पहचान लिया)
आरु मृत मौन शत जोवानले	(और मृत सहस्र शहीदों के लिए)
मोर अश्रु अञ्जलि जाचिलो।	(मेरे अश्रु अंजलि ज्ञापन किया)

भारत-चीन युद्ध के दौरान भारतीय सेना के अनेक जवान शहीद हुए। अरुणाचल प्रदेश का जसवंतगढ़ युद्ध स्मारक आज भी उन वीर जवानों के गाथा याद दिलाता है। वहाँ से गुजरने वाले हर जवान और आम लोग उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करके जाते हैं। यह केवल भारत-चीन युद्ध के शहीदों के लिए ही नहीं, अपितु सभी शहीद जिन्होंने देश के लिए अपना जीवन दान किया, के लिए है। उन सभी का बलिदान भुलाया नहीं जा सकता है। हम सभी को नमन और स्मरण करते हैं।

भारतीय वीरों की शौर्यगाथा
बाना पोस्ट

सियाचिन आज के समय दुनिया का सबसे ऊँचा युद्धस्थल है जहाँ भारतीय सेना और पाकिस्तानी सेना आमने-सामने है। लेकिन भारतीय सेना हमेशा पाकिस्तानी सेना पर भारी पड़ी है, चाहे वह 1971 का युद्ध हो, 1965 हो या 1999 का कारगिल युद्ध। अगर हम दुनिया के सबसे दुर्गम इलाके यानी सियाचिन में भारतीय सेना के पराक्रम की बात करें तो गर्व से सीना चौड़ा हो जाता है। वो इसलिए कि जहाँ एक तरफ तापमान -50° तक गिर जाता है और ऑक्सीजन की इतनी कमी कि साँस लेने में कठिनाई हो, उस स्थिति में दुश्मन के दाँत खट्टे करके उन्हें सबसे ऊँची पोस्ट से खदेड़ना अपने आप में एक मिसाल है।

यह वो दौर था जब पाकिस्तान का सियाचिन की सबसे ऊँची चोटी पर कब्जा था तब भारतीय सेना द्वारा इन चोटियों से दुश्मन की सेना को खदेड़ने के लिए अभियान चलाया गया। वैसे तो सियाचिन निर्जन इलाका है, लेकिन सामरिक दृष्टि से भारत के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसी कारण वहाँ पर दुश्मन का होना, भारत की चिंता बढ़ा रहा था। 21,153 फीट की ऊँची चोटी पर पाकिस्तान का कब्जा था। पाकिस्तान ने वहाँ पर अपनी एक पोस्ट भी बना रखी थी जिसका नाम था 'कायद पोस्ट'। इस पोस्ट के माध्यम से दुश्मन हमारी हर गतिविधि पर आसानी से नजर रख सकता था क्योंकि वो हमसे कहीं अधिक ऊँचाई पर थे। कायद पोस्ट पर हमेशा पाकिस्तान के स्पेशल सर्विसेस के जवानों का पहरा रहता था। दुश्मन रुक-रुककर भारतीय सेना पर गोलीबारी करता रहता था इसलिए कायद पोस्ट से दुश्मन को खदेड़ना बहुत ही जरूरी हो गया था।

विनीत शर्मा

जन्म : 02 जनवरी, 1990, टूंडला, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : बी.ई., बीटीसी

संप्रति : सहायक अध्यापक, बेसिक शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश

संपर्क : मोबाइल– 8445276009

ई-मेल : sharmavineet883@gmail.com

इस अभियान की जिम्मेदारी जम्मू-कश्मीर लाइट इन्फेंट्री (JKLI) को सौंपी गई। 29 मई, 1987 को लेफ्टिनेंट राजीव पाण्डेय के नेतृत्व में 19 जवानों की एक टुकड़ी तैयार की गई। भीषण ठंड और खून जमाने वाली हवाओं के बीच जब जवानों ने चढ़ाई प्रारंभ करने की तैयारी की तो उनके सामने चढ़ने को बरफ की खड़ी दीवार थी। लेफ्टिनेंट राजीव पाण्डेय ने दीवार पर रस्सियों के सहारे चढ़ने की योजना बनाई। जवानों द्वारा दीवार पर रस्सी बाँधी जाने लगी, लेकिन कुछ ही ऊपर पहुँचते ही दुश्मन को सैनिकों के आने की भनक लग गई और दुश्मन ने हमारे सैनिकों पर गोलीबारी शुरू कर दी। ऊँचाई पर होने के कारण अगर वहाँ से एक पत्थर भी फेंका जाता था तो वह गोली की गति से लगता था। इस लड़ाई में हमारे नौ जवान शहीद हो गए जिनमें से लेफ्टिनेंट राजीव पाण्डेय भी थे। सबसे दुखद बात यह थी कि शहीद जवानों के शव बरफ में ढूँढ़ें न जा सके। परिस्थितियाँ बहुत विषम थीं और चोटी पर पहुँचने का पहला प्रयास विफल हो गया था।

पहले प्रयास की विफलता के बाद भी हमारे जाँबाज सैनिकों ने हार नहीं मानी। विषम परिस्थितियों में भी अगला हमला करने की तारीख प्रस्तावित हुई। 62 सैनिक पूरे जोश के साथ अपने साथियों की मौत का बदला लेने और सबसे ऊँची पोस्ट से पाकिस्तानी सेना को खदेड़ने के लिए फिर से निकल पड़े। लेकिन ग्लेशियर पर पहुँचते ही ठंड से दो सैनिकों की जान चली गई। इस कारण से हमले की तारीख में बदलाव किया

गया और अब तारीख रखी गई 24 जून और ऑपरेशन का नाम 'लेफ्टिनेंट राजीव पाण्डेय' के नाम पर 'ऑपरेशन राजीव' रखा गया। भारतीय सेना जल्द-से-जल्द ऑपरेशन को खत्म करना चाहती थी। इसके लिए तीन सूबेदारों के नेतृत्व में तीन टीमों का गठन किया गया। पहली टीम की कमान सूबेदार हरनाम सिंह के हाथ में, दूसरी टीम का नेतृत्व सूबेदार संसार चंद कर रहे थे और तीसरी टीम की कमान सूबेदार बाना सिंह के हाथ में थी। सूबेदार बाना सिंह की टीम को रिजर्व रखा गया था।

तूफान इतना भयंकर था कि कुछ नहीं दिख रहा था, लेकिन एक अच्छी बात यह थी कि इस तूफान के कारण दुश्मन भी उनको नहीं देख पा रहा था। खराब परिस्थितियों के बीच सूबेदार बाना सिंह खड़ी बरफ की दीवार पर धीरे-धीरे चढ़ते रहे।

24 जून, 1987 को पहली टीम सूबेदार हरनाम सिंह के नेतृत्व में पूरे जोश के साथ चढ़ाई पर निकली, लेकिन बरफ में कई घंटे चलने के बाद भी वे ज्यादा दूर नहीं जा सके। अतः रणनीति में बदलाव करते हुए टीम ने ऊपर चढ़ने के लिए राजीव पाण्डेय द्वारा लगाई गई रस्सियों को ढूँढ़ा और रस्सियों के सहारे चढ़ाई चालू की। लेकिन 50 मीटर ही चढ़ाई करने पर दुश्मन को उनकी भनक लग गई और दुश्मन ने गोलीबारी चालू कर दी। इस गोलीबारी में हमारे तीन सैनिक शहीद हो गए। भारतीय सेना ने जवाबी गोलीबारी करना चाही, लेकिन भीषण ठंड के कारण बंदूकें जम चुकी थीं। पाकिस्तानी सैनिक ऊपर से स्टोव पर अपनी बंदूकें गरम करके लगातार गोलीबारी कर रहे थे। सूबेदार हरनाम सिंह ने बरफ में छिपकर किसी तरह खुद की और अपने साथियों की जान बचाई।

इस घटना के बाद फिर 25-26 जून की रात को सूबेदार संसार चंद की टीम ने चढ़ाई शुरू की और इस बार उनकी टीम को कवर देने के लिए नीचे मशीन गन और लांचर की तैनाती की गई। घुप्प अँधेरे और भयंकर ठंड के बीच जवान लगातार चढ़ाई करते रहे और उधर पाकिस्तानी सेना भी लगातार गोलीबारी कर रही थी क्योंकि उनको भी एहसास हो गया गया था कि भारतीय सैनिक हार मानने वाले नहीं हैं। भारतीय सैनिकों के लिए परिस्थितियाँ बहुत ही गंभीर थीं। सूबेदार संसार चंद चढ़ाई करते-करते ऊपर पहुँच गए थे और जब उन्होंने देखा कि वहाँ पाकिस्तान की एक ही पोस्ट है तब उन्होंने गोलीबारी करनी चाही, लेकिन बंदूकें अधिक ठंड की कारण जाम हो गईं। फिर उन्होंने कवर देने वाली टीम से रेडियो के माध्यम से संपर्क करने का प्रयास किया तो रेडियो ने भी ठंड के कारण काम करना बंद कर दिया था। सूबेदार संसार चंद पोस्ट से महज 100 मीटर की दूरी पर थे। उन्होंने अपने साथी रामदत्त को आदेश दिया कि वो नीचे जाएँ और कमांडर को ऊपर की स्थिति से अवगत कराएँ। रामदत्त ने संसार चंद का आदेश मानकर नीचे उतरना चालू ही किया था कि दुश्मन की एक गोली उनके शरीर में लगी और वे 500 मीटर नीचे बरफ में गिरकर शहीद हो गए और सैनिकों का यह प्रयास भी विफल हो गया।

तीन दिन से भूखे भारतीय सैनिक किसी भी कीमत पर पीछे हटने को तैयार नहीं थे अब मौसम भी साफ होता जा रहा था और पाकिस्तान की तरफ से गोलीबारी भी कम होती जा रही थी। इससे यह अंदाजा लगाया गया कि अब दुश्मन की गोलियाँ खत्म हो रही हैं। इस बार कमांडर वरिंदर सिंह ने खुद मोर्चा सँभाला और दो टीमों के साथ एक बार पूरे जोश के साथ चढ़ाई शुरू की। पहली टीम में आठ जवानों के साथ नेतृत्व खुद मेजर वरिंदर सिंह कर रहे थे, जबकि दूसरी टीम की कमान सूबेदार बाना सिंह के हाथ में थी। इस टीम में पाँच जवान थे।

इस बार रणनीति में बदलाव किया गया। चढ़ाई दिन के समय शुरू की गई। दोनों ही टीम अलग-अलग रास्तों पर एक साथ निकलीं। मेजर वरिंदर सिंह की टीम कुछ ही दूर चली कि एक गोली खुद मेजर के सीने पर लग गई और मेजर वहीं गिर पड़े। अपने कमांडर को घायल देख जवान निराश हो गए।

वहीं दूसरी तरफ सूबेदार बाना सिंह ने जो रास्ता चुना था, वो बहुत ही कठिन था। चढ़ाई बिलकुल खड़ी थी और दुश्मन इस रास्ते से आने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। सूबेदार बाना सिंह की टीम कठिन परिस्थितियों में बढ़ी जा रही थी तभी दोपहर में बर्फीला तूफान चालू हो गया। तूफान इतना भयंकर था कि कुछ नहीं दिख रहा था, लेकिन एक अच्छी बात यह थी कि इस तूफान के कारण दुश्मन भी उनको नहीं देख पा रहा था। खराब परिस्थितियों के बीच सूबेदार बाना सिंह खड़ी बरफ की दीवार पर धीरे-धीरे चढ़ते रहे। कई घंटों की चढ़ाई के बाद आखिरकार बाना सिंह की टीम चोटी पर पहुँचने में सफल हुई। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि पाकिस्तान की एक ही पोस्ट है। सूबेदार बाना सिंह ने बिना आराम किए अटैक की योजना बनाई, लेकिन ठंड के कारण बंदूकों ने यहाँ भी साथ नहीं दिया। फिर उन्होंने अपने पास से एक ग्रेनेड निकाला और भाग कर चौकी के अंदर फेंककर दरवाजा बंद कर दिया जिससे उसके अंदर मौजूद दुश्मन के सैनिक मारे गए। कुछ सैनिक जो चौकी के बाहर थे, उनके ऊपर बंदूक की संगीनों से हमला कर उनको वहीं ढेर कर दिया। यह मंजर देखकर बचे हुए सैनिक भाग गए।

अब 21 हजार फीट की ऊँचाई पर सियाचिन की चोटी पर तिरंगा फहरा रह था। इस सफलता के लिए कई वीर सैनिकों की जान गई, लेकिन सूबेदार बाना सिंह और उनकी टीम ने न केवल अपने शहीद साथियों की मौत का बदला लिया, बल्कि सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण चौकी पर तिरंगा फहराया। सूबेदार बाना सिंह को उनके अदम्य साहस और बहादुरी के लिए भारतीय सेना का सर्वोच्च मेडल परमवीर चक्र प्रदान किया गया और उनके नाम पर 'कायद पोस्ट' का नाम 'बाना पोस्ट' किया गया।

सुनारी से श्रीलंका
एक शहीद गाथा

कुछ घटनाएँ संयोगवश एक साथ नहीं घटित होती हैं, बल्कि उनके पीछे इतिहास रचना छिपा होता है। जून 1967 में राजस्थान के एक छोटे से गाँव सुनारी से एक युवक नसीराबाद छावनी में जाट रेजिमेंट यूनिट में 3158302 नं. पर पंजीकृत हुआ। जून 1967 में ही भारतीय सेना की स्पेशल फोर्स 10 पैरा-कमांडो की स्थापना हुई। दोनों घटनाएँ संयोग नहीं, इतिहास बनीं। इसके लिए सुनारी से श्रीलंका तक की यात्रा करनी होगी।

सुनारी, राजस्थान के पश्चिमी जिले नागौर का एक गाँव है। गाँव के कृषक परिवार में चौधरी परमानाराम के घर 07 जून, 1947 को एक बालक का जन्म हुआ। नाम रखा गया—मोडाराम। इसी बालक ने युवा रूप में 07 जून, 1967 को नसीराबाद छावनी की जाट रेजिमेंट यूनिट में पंजीयन पाकर सेना में प्रवेश किया। पर इस घटना को एक इतिहास सृजित करना था। सैन्य प्रतिभा के कारण जुलाई 1969 में मोडाराम का पंजीयन 10 पैरा-कमांडो (पैराशूट रेजीमेंट) में पंजीयन संख्या JC163863L पर हो गया। यह वही रेजीमेंट है, जिसका सृजन जून 1967 में हुआ था।

इसी 10 पैरा-कमांडो रेजीमेंट ने भारत-पाक युद्ध 1971 में छाछरो और इस्लामकोट पर अप्रतिम शौर्य के साथ विजय पताका फहराई। कर्नल भवानी सिंह के नेतृत्व में बलवंत सिंह की सलाह, हेम सिंह की रचना के साथ बी.डी. डोगरा व मोडाराम की विशिष्ट व्यूह रचना से शानदार विजय मिली। कर्नल भवानी सिंह को महावीर चक्र मिला।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आजाद हुए देशों में आजादी के साथ कुछ ऐतिहासिक समस्याएँ भी पैदा हुईं। श्रीलंका की तमिल समस्या भी इनमें से एक थी। भारत, श्रीलंका की तमिल समस्या के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता था। भारत और श्रीलंका के बीच इस प्रकरण पर एक शांति समझौता हुआ। भारतीय शांति सेना ने श्रीलंका में प्रवेश किया। 10 पैरा-बटालियन 1987 में भारत और श्रीलंका के बीच हुए शांति समझौते को लागू कराने का उद्देश्य लेकर श्रीलंका जाने वाली भारतीय शांति सेना की प्रथम बटालियन बनी। बटालियन ने अपने संबल, अदम्य साहस और विलक्षण युद्ध पद्धति से दुश्मन को पूर्णतया कुचलते हुए विजेता का गौरव हासिल किया और बटालियन तथा देश के यश को सुदूर पार देशों तक पहुँचाया। बटालियन श्रीलंका से 23 मार्च, 1990 को पूर्ण विजयी होकर वापस भारत रवाना हुई।

बटालियन ने पलाली में अपना कैंप लगाते हुए सख्त ट्रेनिंग और कठिन अभ्यास के साथ सर्विलांस और रेकी के द्वारा उग्रवादियों के ठिकानों की जानकारी हासिल कर ली। उग्रवादियों द्वारा शांति समझौते को भंग करने का दुस्साहस करते ही बटालियन ने अत्यंत दृढ़ता और बहादुरी के साथ अपने आक्रामक अभियान की शुरुआत कर दी। अपने कार्यकाल के दौरान वट्टीकलेवा, ट्रीकोमाली, बाबूनिया, कोकोविल, किलोनाच्छी, प्वाइंट पेड्रो तथा चावकचेरी के

बजरंगलाल जेठू

जन्म : 10 अगस्त, 1958

संप्रति : प्रतिष्ठित हिंदी त्रैमासिक 'गवरजा' का संपादन-प्रकाशन, स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : ज्ञान-विज्ञान पर लगभग 200 आलेख प्रकाशित। लोकोपयोगी व पर्यावरण संरक्षण पर दो दर्जन पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : पर्यावरण व वन मंत्रालय, भारत सरकार का मेदिनी पुरस्कार, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का मौलिक लेखन पुरस्कार, राजभाषा गौरव पुरस्कार, भारत सरकार व राजस्थान सरकार हिंदी सेवी पुरस्कार आदि।

संपर्क : मो. : 9414961597, 8107261597

ई-मेल : bljethu@gmail.com

घने जंगलों में फैले एल.टी.टी.ई. के आतंकियों का सफाया करके उन्हें कमरतोड़ पराजय दी और यह साबित कर दिया कि किस तरह युद्ध के विलक्षण तरीकों और स्पष्ट योजना से एक सोच को वास्तविकता में बदला जा सकता है। बटालियन की एक छोटी-सी टुकड़ी ने कोलंबो में एक साहसिक ऑपरेशन करके सभी की सराहना हासिल ली, जिससे प्रभावित होकर 10 पैरा-कमांडो की एक टुकड़ी को स्थायी रूप से कोलंबो में रखा गया।

11-12 अक्तूबर, 1987 की रात जाफना यूनिवर्सिटी में एक ऑपरेशन किया गया, जिसका नाम 'ऑपरेशन पवन' था। इसकी गणना इतिहास में किए गए सबसे मुश्किल ऑपरेशनों में की जाती है। दुश्मन के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं थी तथा उसके लड़ने की काबिलियत और उपलब्ध सामान के बारे में जानकारी कम थी। हेलीकॉप्टर के द्वारा जैसे ही कमांडो टीम वहाँ पहुँची, दुश्मन ने भारी गोलाबारी शुरू कर दी, लेकिन मौत को मात देने वाले कमांडो जवाबी कार्यवाही में भयंकर गोलाबारी करते हुए दुश्मन के बीच से रास्ता बनाकर जाफना यूनिवर्सिटी पहुँच गए और एक उत्कृष्ट युद्ध व्यूह-रचना कर शत्रु पर भीषण प्रत्यार्पण किया और उसे भारी नुकसान पहुँचाया। आपसी सहयोग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कमान अधिकारी महोदय ने स्वयं एक टैंक की कमान सँभालकर शत्रु पर दूसरी तरफ से हमला बोल दिया और अनेक आतंकवादियों को मौत के घाट उतारकर दुश्मन के ऊपर अपने युद्ध-कौशल की श्रेष्ठता को साबित किया।

सूबेदार मोडाराम भी श्रीलंका शांति सेना में 10 पैरा-कमांडो के सदस्य के रूप में श्रीलंका पहुँचे। भारतीय सेना ने 'ऑपरेशन पवन' नाम दिया। इसके पश्चात भी ऑपरेशन पवन के तहत ही कई ऑपरेशन संपन्न किए। मोडाराम ने अपनी बटालियन में श्रीलंका में अपने उत्कृष्ट शौर्य के लिए विशेष सेवा-मेडल W/c श्रीलंका (Special Service Medal W/c Srilanka) और विदेश सेवा मेडल W/c श्रीलंका (Videsh Seva Medal W/c Srilanka) प्राप्त किए।

आर.पी. सिमये से पुरस्कृत होते हुए मोडाराम

मोडाराम शौर्य का अप्रतिम खजाना रहे हैं। कमांडर बलवीर सिंह उनको याद करते हुए कहते हैं, "उस दिन हमने दिन में माइन्स की जाँच की। 'ऑपरेशन चेकमेट-III' था। रात को मुकाबला अवश्यंभावी हो गया। अग्रिम टीम के रूप में 'B असाल्ट' के बाद मध्य टीम 'A असाल्ट' में मोडाराम थे। रिजर्व 'C असाल्ट' टीम सबसे पीछे थी। मोडाराम ने मेजर नोरियाल से कहा कि हमें पीछे क्यों लगाया जाता है।"

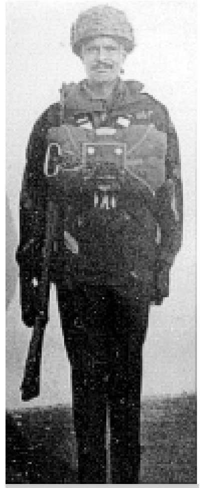

कमाण्डो मोडाराम

ऑपरेशन पवन के अंतर्गत चले अभियानों में ऑपरेशन चेकमेट-III (OP CHECK MATE III) भी एक था। चेकमेट-III के दौरान 26 अगस्त, 1988 को 10:30 बजे 10 पैरा का श्रीलंका के ग्रीनपाचे इलाके के घने जंगल अलाम्पिल (Alampil) में एक बहुत महत्वपूर्ण लिट्टे बेस कैंप के बाहरी सुरक्षा क्षेत्र से संपर्क हुआ। 'A असाल्ट' टीम के एक ट्रूप को दुश्मन के रीट्रीट को बाँटने हेतु एक Flanking Move पूर्ण करने का आदेश हुआ। असाल्ट टीम के कमांडर ने नं. 2 असाल्ट ट्रूप को इस कार्य हेतु चुना और JC163863L AP/SUP मोडाराम को इस हेतु ट्रूप को तैयार करने का आदेश दिया। मोडाराम ने तुरंत ट्रूप को तैयार किया। Flanking Move को पूर्ण करने के बाद ट्रूप असाल्ट लाइन पर तैनात हुआ और शत्रु के मोर्चाबंदी का सामना करने हेतु लगातार अपने आपको बेहतर स्थिति में ले जाने की कोशिश करते रहे। सूबेदार मोडाराम ट्रूप को लगातार सामने से निर्देशित करते रहे और टीम को आगे बढ़ने के लिए प्रेरक नेतृत्व देते रहे। 30 मीटर के करीब पहुँचते ही अचानक ट्रूप पर गोलियों व ग्रेनेड की भीषण बौछार हुई। सूबेदार मोडाराम ने मोर्चा सँभालते हुए लिट्टे पर काउंटर अटैक किया और ट्रूप का मनोबल बढ़ाते हुए उग्रवादियों को मार गिराया। इसी दौरान मोडाराम को एक मजबूत बंकर दिखाई दिया। मोडाराम ने तुरंत ही बंकर को नष्ट करने का निश्चय किया। शेष ट्रूप को फायर कवर देने के लिए छोड़कर मोडाराम एक स्क्वाड के साथ बंकर की ओर बढ़ गए। बंकर के 10 मीटर तक पहुँचते ही सामने से गोलियों की भारी बौछार शुरू हो गई। घायल अवस्था में भी रेंगकर सूबेदार मोडाराम ने बंकर ध्वस्त किया और खुद वीरगति को प्राप्त हो गए।

कमांडोज के अदम्य साहस और शांति स्थापना में दिए गए अमूल्य योगदान के लिए श्रीलंका सरकार ने शहीदों के नाम पर जाफना में एक युद्ध स्मारक बनाकर शहीदों का सम्मान किया।

महामहिम राष्ट्रपति ने असाधारण कर्तव्य निर्वहन के लिए शौर्यपुरुष को दिवंगतोपरांत सेना मेडल प्रदान किया। राजस्थान सरकार ने भी शौर्य-पुरुष को वीरोचित सम्मान प्रदान कर उनके गाँव के विद्यालय का नाम भी 'शहीद सूबेदार श्री मोडाराम राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय सुनारी, नागौर' रखकर व्यक्तित्व को चिरस्मरणीय बनाया।

भारतीय सैन्य अकादमी
जहाँ फौलाद तैयार करती है सेना

शौर्य, विवेक और बलिदान का मूल मंत्र पढ़ाकर थल सेना को देश की आन, बान और शान की खातिर जान तक लुटा देने वाले जाँबाज अफसर देने वाली ऐतिहासिक भारतीय सैन्य अकादमी (आईएमए) 89 वर्ष की हो गई है। अपने इन आठ दशकों के जीवनकाल में अकादमी अविभाजित भारत को फील्ड मार्शल मानेकशॉ, पाकिस्तान के पहले सेनाध्यक्ष जनरल मूसा और वर्मा के जनरल स्मिथडन जैसे योद्धाओं के अलावा भारतीय सेना को लगभग 61 हजार से अधिक और लगभग 28 मित्र देशों को 3,000 हजार से अधिक जाँबाज अफसर दे चुकी है। इन आठ दशकों के उतार-चढ़ाव भरे जीवनकाल में इस अकादमी ने स्वयं को भारत की सुरक्षा की गारंटी साबित किया है।

जयसिंह रावत

जन्म : 10 अप्रैल, 1955, सांकरी, चमोली, गढ़वाल (उत्तराखंड)।

संप्रति : लेखक व पत्रकार।

सम्मान : पत्रकारिता में उल्लेखनीय योगदान के लिए राजस्थान पत्रिका के के.सी. कुलिस अंतरराष्ट्रीय प्रिंट मीडिया जर्नलिज्म अवार्ड, भारत समरसता मंच की ओर से सामाजिक समरसता राष्ट्रीय सम्मान के साथ ही विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

प्रकाशन : आधा दर्जन के अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9412324999

ईमेल– jaysinghrawat@gmail.com

मातृभूमि के लिए मर मिटने का संस्कार देती है अकादमी

भारत में ब्रिटिश सेना के तत्कालीन कमांडर-इन-चीफ, फील्ड मार्शल सर फिलिप डब्ल्यू. चेटवुड ने जब 10 दिसंबर, 1932 को भारतीय सैन्य अकादमी का औपचारिक उद्घाटन किया था तो उन्होंने अकादमी के पहले बैच, जिसे 'पायनियर्स' कहा गया, को संबोधित करते हुए कहा था कि "हर बार और हमेशा, अपने देश की सुरक्षा, सम्मान और कल्याण के हित में काम करना आपका सबसे पहला कर्तव्य है, उसके बाद आपका कर्तव्य अपने अधीन काम कर रहे मातहतों के सम्मान, सुरक्षा, कल्याण और सुख-सुविधा का ख़याल रखना है, जबकि सबसे अंत में, हर बार और हमेशा, आपके अपने खुद के आराम, सुख-सुविधा और सुरक्षा की बारी आती है। चेटवुड के ये 'ऐतिहासिक आदर्श वाक्य' गुरुमंत्र के तौर पर इस अकादमी द्वारा आगे बढ़ने वाले अधिकारियों को संस्कार के तौर पर दिए जाते हैं। कौरव और पाण्डव जैसे महाभारत के महायोद्धाओं को युद्धकला में प्रवीण करने वाली द्रोण नगरी, देहरादून की इस अकादमी में कठिन प्रशिक्षण के बाद हिंदू, सिक्ख, मुस्लिम और इसाई धर्म गुरुओं द्वारा धर्मग्रंथों को साक्षी मानकर देश की आन, बान और शान के लिए मर मिटने की सौगंध दिलाई जाती है। यह इस बात का सबूत है कि भारत की सेना न केवल राजनीति से दूर है, बल्कि सांप्रदायिक संकीर्णताओं से भी बहुत ऊपर है और हर एक योद्धा का पहला धर्म उसकी मातृभूमि की रक्षा करना है।

पहले इंपीरियल कॉलेज बना जिसका पुनर्जन्म आरआईएमसी के रूप में हुआ

यह अकादमी प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों की दिलेरी का प्रतिफल तो थी, लेकिन इसके लिए

गोपाल कृष्ण गोखले, पं. मदन मोहन मालवीय और मोतीलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने कोई कम पापड़ नहीं बेले थे। इन्हीं नेताओं के

> **भारतीयों को सेना में अधिकारी के रूप में शामिल करने की माँग के जोर पकड़ने पर और गोपाल कृष्ण गोखले के अथक प्रयासों से ब्रिटिश शासन ने 1912 में 'इस्लिंगटन कमीशन' बनाया जिसने 1915 में अपनी रिपोर्ट दी। इस कमीशन की पाँच सिफारिशें थीं जिनमें से एक भारत और इंग्लैंड में उच्च सरकारी पदों पर नियुक्ति की थी। कमीशन की यह भी सिफारिश थी कि 25 प्रतिशत उच्च सरकारी पद भारतीयों से भरे जाएँ जिनमें कुछ पद सीधी भर्ती से तथा कुछ पदोन्नति से भरे जाएँ और इन उच्च पदों को प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के पदों में श्रेणीबद्ध किया जाए। मगर उसकी सिफारिशें खारिज कर दी गईं।**

दबाव और भारतीय जनमानस में बढ़ती जागृति को देखते हुए मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के सुधार आए और धीरे-धीरे भारत की सेना का भारतीयकरण होने लगा। भारतीयों को सेना में अधिकारी के रूप में शामिल करने की माँग के जोर पकड़ने पर और गोपाल कृष्ण गोखले के अथक प्रयासों से ब्रिटिश शासन ने 1912 में 'इस्लिंगटन कमीशन' बनाया जिसने 1915 में अपनी रिपोर्ट दी। इस कमीशन की पाँच सिफारिशें थीं जिनमें से एक भारत और इंग्लैंड में उच्च सरकारी पदों पर नियुक्ति की थी। कमीशन की यह भी सिफारिश थी कि 25 प्रतिशत उच्च सरकारी पद भारतीयों से भरे जाएँ जिनमें कुछ पद सीधी भर्ती से तथा कुछ पदोन्नति से भरे जाएँ और इन उच्च पदों को प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के पदों में श्रेणीबद्ध किया जाए। मगर उसकी सिफारिशें खारिज कर दी गईं। इससे पहले वायसरॉय लॉर्ड कर्जन ने 1901 में मेरठ में इंपीरियल कैडेट कोर की स्थापना कर दी थी, जिसमें भारतीय राजकुमारों और उच्च वर्ग के लोगों को ही प्रवेश की व्यवस्था थी। मेजर डी.एच. कैमरून को इसका कमांडेंट बनाया गया था। यह कॉलेज बाद में मेरठ से देहरादून शिफ्ट किया गया। भले ही यह कॉलेज 1917 में बंद हो गया, मगर इसके साथ ही भारतीयों का अफसर के रूप में सेना में प्रवेश शुरू हो गया। फिर भी यह व्यवस्था भारतीय नेतृत्व को स्वीकार्य नहीं थी। इंपीरियल कैडेट कोर या कॉलेज के बंद होने के बाद इसे 1932 में प्रिंस ऑफ वेल्स रॉयल इंडियन मिलिट्री कॉलेज के रूप में पुनर्जीवित किया गया। यह कॉलेज युवाओं को पहले सैण्डहर्ट्स अकादमी लंदन के लिए और फिर बाद में 1932 में इंडियन मिलिट्री अकादमी देहरादून के लिए युवाओं को तैयार करने लगा।

1922 में रॉयल मिलिट्री कॉलेज की स्थापना

प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीय जाँबाजों की दिलेरी देखने के बाद मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड कमीशन के सुधार लागू किए गए तो किंग्स कमीशन के तहत ब्रिटेन में भारतीयों को प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। उस समय भारत के प्रथम सेनाध्यक्ष जनरल एम. करियप्पा समेत 31 भारतीयों को वहाँ प्रशिक्षित किया गया। इसके साथ ही देहरादून में 1922 में रॉयल मिलिट्री कॉलेज की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य भारतीयों को इंग्लैंड के मिलिट्री कॉलेज के लिए प्रशिक्षित करना था। इसके साथ ही तत्कालीन सेनाध्यक्ष लॉर्ड रालिन्सन द्वारा

8 इन्फेंट्री और कैवलरी यूनिटों में भारतीयों को अधिकारी बनाने की घोषणा की गई। इस योजना को भारतीय अधिकारियों को अलग रखने की दृष्टि से देखा गया और यह भी माना गया कि अंग्रेज शासक भारतीय अधिकारियों को अंग्रेज ट्रूप्स का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं मानते हैं। उसके बाद भारतीय नेतृत्व के विरोध के बाद सैण्डहर्ट्स कमेटी का गठन किया गया, जिसमें मोतीलाल नेहरू और एम.ए. सिन्हा आदि को भी सदस्य बनाया गया। इस कमेटी ने सैण्डहर्ट्स अकादमी में भारतीयों को प्रवेश की सिफारिश की जिसे नामंजूर कर दिया गया। लेकिन बाद में 29 भारतीयों को सैन्य प्रशिक्षण के लिए इंग्लैंड भेजने की व्यवस्था हो ही गई।

आईएमए की स्थापना

इधर भारतीय नेता निरंतर भारतीय फौज का भारतीयकरण कराने के लिए जोर लगाते रहे। 1930 में लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन में भी यह मुद्दा जोरदार ढंग से उठाया गया। नतीजतन तत्कालीन कमांडर-इन-चीफ जनरल चेटवुड के नेतृत्व में एक कमेटी का गठन हुआ और कमेटी ने 1931 में भारत में एक मिलिट्री कॉलेज की स्थापना की सिफारिश कर दी। इस कमेटी ने प्रस्तावित कॉलेज के लिए देहरादून को ही सर्वोत्तम माना और इसके बाद 1932 में ऐसे संस्थान की स्थापना हो ही गई, जिसके पहले कमांडेंट ब्रिगेडियर एल.पी. कोलिन्स बनाए गए।

अकादमी के पहले बैच में मानेकशॉ पास आउट हुए

भारतीय नेताओं के अथक प्रयासों के बाद 01 अक्तूबर, 1932 को 40 पायनियर्स के साथ फील्ड मार्शल सर फिलिप चेटवुड ने तत्कालीन रेलवे स्टाफ कॉलेज पर इस अकादमी का उद्घाटन किया। बाद में अकादमी का औपचारिक उद्घाटन 10 दिसंबर, 1932 को भारत में ब्रिटिश सेना के तत्कालीन कमांडर-इन-चीफ फील्ड मार्शल सर फिलिप डब्ल्यू. चेटवुड ने किया था। इसे 1933 में किंग्स कलर दिया गया। अकादमी के 40 कैडेटों के पहले बैच में फील्ड मार्शल मानेकशॉ भी एक थे। इनमें 15 सीधे प्रवेश के, 15 सेना के और 10 विभिन्न देसी रियासतों के थे। इनमें एस.एफ.जे. फील्ड मार्शल के अलावा जनरल मोहम्मद मूसा, जो बाद में पाकिस्तान के थल सेनाध्यक्ष बने, और स्मिथडन, जो कि बर्मा के सेनाध्यक्ष बने, शामिल थे। शुरू में अकादमी में केवल दो कंपनियाँ थीं, लेकिन कैडेटों की संख्या बढ़ने पर 1934 में यहाँ चार कंपनियाँ बना दी गईं। प्रारंभ में यहाँ केवल 200 जेंटलमैन कैडेटों के लिए व्यवस्था थी और हर छह महीने में 40 कैडेट पास आउट होते थे। प्रथम विश्वयुद्ध तक 321 कैडेट कमीशन ले चुके थे। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध में अधिक अफसरों की जरूरत पड़ी तो शार्ट सर्विस के 710 ब्रिटिश अधिकारियों के साथ ही 4278 अधिकारी यहाँ से पास आउट हो गए।

विभाजन के समय पाकिस्तानी प्रशिक्षु काकुल चले गए

आजादी के बाद सन् 1947 में भारतीय सैन्य अकादमी में पहले भारतीय कमांडेंट मेजर जनरल ठाकुर महादेव सिंह बने। सन् 1948 का वर्ष अकादमी के लिए गौरवशाली रहा। उस वर्ष प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल सी. राजगोपालाचारी ने 09 अक्तूबर को तथा 09 दिसंबर को प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रथम विश्वविद्यालय कोर्स की सलामी ली। सन् 1947 में पाकिस्तान जाने वाले कैडेट पाकिस्तान मिलिट्री अकादमी काकुल चले गए।

तीनों सेनाओं के लिए सशत्र सैन्य अकादमी बनी

सन् 1949 में अकादमी को तीनों सेनाओं के लिए नया स्वरूप दिया गया और इसका नाम सशत्र सैन्य अकादमी रखा गया, जिसमें इसका मिलिट्री विंग प्रेमनगर स्थित कैंपस में रहा और अंतर्सेना विंग देहरादून के ही क्लेमेंटाउन में चला गया। सन् 1950 में इसका स्वरूप पुनः बदल कर इसका नाम 'राष्ट्रीय रक्षा अकादमी' रख दिया गया और अंतर्सेना विंग का नाम 'संयुक्त सेना विंग' रखा गया।

> **अकादमी से अब तक 61 हजार से अधिक जेंटलमैन कैडेट्स पास आउट हो चुके हैं जिन पर देश की सुरक्षा का भार है। इनके अलावा अकादमी अब तक 28 मित्र राष्ट्रों के लिए भी सैन्य अधिकारी प्रशिक्षित कर चुकी है। अकादमी के दीक्षांत परेडों में जवाहरलाल नेहरू से लेकर डॉ. मनमोहन सिंह तक विभिन्न प्रधानमंत्री और छह राष्ट्रपति भाग ले चुके हैं।**

देहरादून से नेशनल डिफेंस अकादमी खड़गवासला चली गई

सन् 1954 में संयुक्त सेना विंग अपने नए नाम, निशान और कमांडेंट के साथ नवीन परिसर खड़गवासला चला गया। मिलिट्री विंग का नाम बदल कर 'मिलिट्री कॉलेज' कर दिया गया, जिसे देहरादून में ही रखा गया, जिसके कमांडेंट ब्रिगेडियर आपजी रणधीर सिंह बने। मिलिट्री कॉलेज ने 10 दिसंबर को अपनी रजत जयंती मनाई और 1958 में मिलिट्री कॉलेज ने गणतंत्र दिवस में भाग लिया। भारत-चीन युद्ध के बाद 1963 में कमांडेंट का ओहदा मेजर जनरल कर दिया गया। भारत-चीन युद्ध के दौरान अधिकारियों की कमी को पूरा करने के लिए रेगुलर कोर्स की अवधि कम करने के साथ ही आपात कोर्स चलाए गए। लेकिन 1964 में आपात कोर्स समाप्त कर दिए गए और रेगुलर कोर्स फिर शुरू कर दिए गए। सन् 1974 में भारतीय सैन्य अकादमी में प्रवेश के लिए शैक्षिक योग्यता स्नातक करने के साथ ही प्रशिक्षण अवधि दो साल से घटाकर 18 महीने कर दी गई। सन् 1980 में कमांडेंट का ओहदा बढ़ाकर लेफ्टिनेंट जनरल कर दिया गया। ले. जनरल मैथ्यू थॉमस इसके कमांडेंट बने।

भारतीय सैन्य अकादमी भारत के सैन्य प्रशिक्षण की जननी

इस तरह देखा जाए तो देहरादून और आज की भारतीय सैन्य अकादमी भारत के सैन्य प्रशिक्षण की जननी मानी जा सकती है। यहीं से देश की तीनों सेनाओं के प्रशिक्षण की शुरुआत हुई। मात्र 40 प्रशिक्षुओं के साथ शुरू होने वाली इस अकादमी में आज हर समय लगभग 1900 जेंटलमैन कैडेट प्रशिक्षित किए जा सकते हैं। अकादमी अब तक लगभग 52 हजार जेंटलमैन कैडेटों को प्रशिक्षित कर चुकी है, जिनमें 28 मित्र देशों के लगभग डेढ़ हजार विदेशी कैडेट भी हैं। इन विदेशियों में कई राजकुमार भी शामिल हैं। 10 दिसंबर, 1962 को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन ने स्वतंत्रता के बाद पहली बार अकादमी को ध्वज प्रदान किया। 15 दिसंबर, 1976 को दीक्षांत समारोह में तत्कालीन राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली ने अकादमी को दोबारा ध्वज प्रदान किया। अकादमी (आईएमए) में नेशनल डिफेंस अकादमी खड़गवासला और आर्मी कैडेट कॉलेज देहरादून के अलावा लोकसेवा आयोग के जरिये सीधी भर्ती से भी युवा आते हैं।

परमवीरों और महावीरों की जननी है सैन्य अकादमी

यह अकादमी केवल तीनों सेनाओं की जननी ही नहीं, बल्कि परमवीरों और महावीरों की जननी भी है। यहाँ से पास आउट होने वाले हजारों जाँबाज योद्धाओं में से 667 को परमवीर चक्र और विक्टोरिया क्रास जैसे वीरता अलंकरणों से सम्मानित किया गया। इस अकादमी के जाँबाजों को एक विक्टोरिया क्रास, एक जार्ज क्रास, 73 मिलिट्री क्रास, 6 परमवीर चक्र, 13 अशोक चक्र, 64 महावीर चक्र, 40 कीर्ति चक्र, 28 युद्ध सेवा मेडल, 255 वीर चक्र और 164 शौर्य चक्र विभिन्न रणभूमियों में अदम्य साहस और सर्वोच्च बलिदान के लिए मिले हैं। अकादमी की क्षमता 2065 जेंटलमैन कैडेटों को एक साथ प्रशिक्षण देने की है।

61 हजार से अधिक सैन्य अधिकारी दिए अकादमी ने

अकादमी से प्रत्येक छह माह में एक बैच पास आउट होता है और उस अवसर पर शानदार दीक्षांत परेड का आयोजन किया जाता है। अकादमी से अब तक 61 हजार से अधिक जेंटलमैन कैडेट्स पास आउट हो चुके हैं जिन पर देश की सुरक्षा का भार है। इनके अलावा अकादमी अब तक 28 मित्र राष्ट्रों के लिए भी सैन्य अधिकारी प्रशिक्षित कर चुकी है। अकादमी के दीक्षांत परेडों में जवाहरलाल नेहरू से लेकर डॉ. मनमोहन सिंह तक विभिन्न प्रधानमंत्री और छह राष्ट्रपति भाग ले चुके हैं। श्रीमती प्रतिभा पाटिल के परेड की सलामी लेने से पहले दिसंबर 1956 में प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, दिसंबर 1962 में एस. राधाकृष्णन, दिसंबर 1976 में फखरुद्दीन अली, जून 1992 में आर. वेंकटरमन और दिसंबर 2006 में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने मुख्य अतिथि के तौर पर दीक्षांत परेड की सलामी ली थी।

सेना के शौर्य, पराक्रम की गाथा फिल्म 'हकीकत'

भारतीय सेना के शौर्य और पराक्रम पर यूँ हमारे यहाँ बहुत-सी फिल्में बन चुकी हैं। लेकिन उन सभी फिल्मों में एक फिल्म ऐसी है, जिसका आज भी कोई सानी नहीं। इस फिल्म का नाम है 'हकीकत', जो भारतीय सेना के शौर्य, पराक्रम के साथ हमारी सेना के बलिदान, सहनशीलता, संघर्ष, कष्ट, करुणा और वियोग की भी अद्भुत छवि प्रस्तुत करती है। यह फिल्म बताती है कि हमारे देश के जाँबाज सैनिकों में देशप्रेम और कर्तव्यपरायणता की भावना कूट-कूट कर भरी है। स्थितियाँ कितनी भी विकट क्यों न हों, भारतीय सेना तमाम विपरीत परिस्थितियों और मुश्किल-से-मुश्किल घड़ियों में दुश्मन के दाँत खट्टे करने का जज्बा रखती है।

प्रदीप सरदाना

संप्रति : वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार, फिल्म समीक्षक और टीवी पैनलिस्ट के रूप में देश के विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार पत्र-पत्रिकाओं, वेब पोर्टल, आकाशवाणी और न्यूज चैनल्स से जुड़े होने के साथ 'पुनर्वास' साप्ताहिक के संपादक।

लेखन : पिछले 45 वर्षों से लेखन, पत्रकारिता और काव्य की दुनिया में सक्रिय। देश में टेलीविजन पर सर्वप्रथम नियमित पत्रकारिता की शुरुआत करने एवं देश में सबसे कम उम्र के संपादक होने का श्रेय भी प्राप्त है। कुछ वृत्तचित्रों और नाटकों का निर्माण, निर्देशन भी कर चुके हैं।

सम्मान : 37 विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9555826269

ईमेल– sardana.pradeep@gmail.com

फिर फिल्म 'हकीकत' का कथानक ही नहीं, फिल्मांकन, गीत-संगीत, निर्देशन और कलाकारों का अभिनय अर्थात सभी कुछ इतना उत्कृष्ट था कि अपने प्रदर्शन के 58 वर्ष बाद भी यह फिल्म अविस्मरणीय है।

देखा जाए तो भारत-चीन युद्ध की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म 'हकीकत' को आज भी न भूलने के और भी कुछ कारण हैं। एक तो यह कि सही अर्थों में इसे देश की पहली युद्ध फिल्म कहा जा सकता है। इससे पहले राजा-महाराजाओं, मुगल बादशाहों, अंग्रेजों और अपनों के ही साथ युद्ध पर तो 'महाराणा प्रताप,' 'झाँसी की रानी' और 'मुगल-ए-आजम' जैसी कई फिल्में बनीं, जिनमें युद्ध के विशाल दृश्य थे। लेकिन उन फिल्मों को युद्ध फिल्मों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

दरअसल 'हकीकत' ऐसी पहली फिल्म थी, जिसमें स्वतंत्र भारत की सेना का चीन की सेना के साथ युद्ध दिखाया था। सन् 1962 का वह भारत-चीन युद्ध जो इस फिल्म के निर्माण से कुछ समय पूर्व ही हुआ था। यह फिल्म सन् 1964 में प्रदर्शित हुई थी, जबकि इसका निर्माण भारत-पाक युद्ध के कुछ समय बाद ही सन् 1963 में ही शुरू हो गया था। इस युद्ध में भारतीय सेना की हार हुई थी। लेकिन इस युद्ध में भारत की हार क्यों कर हुई? यह फिल्म उस हकीकत को बहुत ही खूबसूरती से दिखाती है।

यूँ फिल्म की कहानी 13 कुमाऊँ की युद्ध टुकड़ी के प्रमुख मेजर शैतान सिंह की वीरगाथा का काल्पनिक चित्रण है। लेकिन सच यह भी है कि भारत-चीन के उस युद्ध की कुछेक घटनाओं को कुछ हद तक वैसे ही दिखाया गया, जैसे वे घटित हुई थीं। इस फिल्म का निर्माण भी भारत सरकार और भारतीय सेना की सहायता से हुआ था। साथ ही, यह देश की ऐसी पहली फीचर फिल्म थी जिसकी शूटिंग लद्दाख में हुई थी। लद्दाख के करीब उसी क्षेत्र में जहाँ भारत की उत्तर-पूर्व सीमा पर चीन ने अचानक युद्ध छेड़ दिया था।

'हकीकत' का निर्माण और निर्देशन फिल्मकार चेतन आनंद ने किया था, जबकि फिल्म में धर्मेंद्र, बलराज साहनी, प्रिया राजवंश, जयंत, सुधीर, शेख मुख्तार, विजय आनंद और संजय खान प्रमुख भूमिकाओं में हैं। साथ ही, भारतीय सिनेमा की दो सशक्त

अभिनेत्रियाँ—इंद्राणी मुखर्जी और सुलोचना भी इसमें संक्षिप्त भूमिकाओं में हैं। जबकि दिलों के तार छेड़ देने वाला फिल्म का संगीत मदन मोहन का है और इसके दिलकश गीत लिखे थे कैफी आज़मी ने।

असल में 'हकीकत' से पहले विदेशों में तो प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध सहित कई युद्ध फिल्म बन चुकी थीं। भारत में इससे पहले चाहे कितनी ही फिल्मों में कई छोटे-बड़े युद्ध दिखाए गए हों, किंतु तब तक हमारे यहाँ धार्मिक, सामाजिक, देशभक्ति, प्रेम कहानी, एक्शन और स्टंट फिल्मों जैसे कई वर्गीकरण थे, लेकिन युद्ध फिल्मों का कोई वर्ग तब तक देश में स्थापित नहीं हुआ था। लेकिन चेतन आनंद सरीखे फिल्मकार ने 'हकीकत' बनाकर देश में युद्ध फिल्मों के युग की शुरुआत कर दी।

आसान नहीं था 'हकीकत' बनाना

हालाँकि भारत-चीन युद्ध पर फिल्म बनाना बहुत मुश्किल काम था। देश इस युद्ध में अपनी हार के बाद बहुत दुखी था। इस युद्ध में हार के

लिए एक बड़ा वर्ग, तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनकी नीतियों को भी जिम्मेदार ठहरा रहा था। स्वयं नेहरू भी इस बात से आहत थे कि उन्होंने चीन के 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारे पर विश्वास कर धोखा खा लिया था। इस हार से उनकी प्रतिष्ठा पर आँच आ गई थी।

उधर फिल्मकार के लिए मुश्किल यह थी कि सेना और दो देशों से जुड़े इस मसले पर फिल्म बनाने में कई विवाद हो सकते थे। कई किंतु-परंतु थे। फिल्म की पटकथा कैसी हो और उसके लिए भारत सरकार और भारतीय सेना की अनुमति कैसे मिलेगी? क्या दर्शक युद्ध फिल्म पसंद करेंगे? ऐसी फिल्म के लिए बड़े बजट की जरूरत है, उसके लिए धन कहाँ से जुटाया जाएगा?

चेतन आनंद 'हकीकत' से पहले 'आँधियाँ', 'टैक्सी ड्राइवर', 'किनारे-किनारे' और 'फंटूश' जैसी फिल्म बना चुके थे। ये सभी फिल्में भी ठीक-ठाक चली थीं। लेकिन चेतन की बड़ी पहचान यह थी कि उनकी पहली फिल्म 'नीचा नगर' को 1946 में कान के अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिल चुका था लेकिन युद्ध फिल्म बनाने का उनका कोई अनुभव नहीं था। फिर 1960 के बाद देश में रंगीन फिल्मों की शुरुआत जोर पकड़ने लगी थी, लेकिन रंगीन युद्ध फिल्म बनाने से फिल्म का बजट सातवें आसमान पर पहुँच रहा था।

इन जैसी कई समस्याओं और सवालों से घिरे होने के बावजूद चेतन ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने झट से स्वयं फिल्म की पटकथा लिखी जिसमें युद्ध के साथ दो प्रेम कहानियों को भी उसी सूत्र में पिरोया गया। जल्दी ही सभी अनुमतियाँ भी ले ली गईं। फिल्म को रंगीन की जगह ब्लैक एंड व्हाइट बनाने का फैसला लिया गया। सुनने में आता रहा है कि चेतन आनंद के जज्बातों को देखते हुए बलराज साहनी और उनकी संस्था 'इप्टा' के कुछ और भी लोग इस फिल्म में निशुल्क काम करने के लिए तैयार हो गए।

इधर फिल्म के लिए एक नायिका की भी तलाश चेतन कर रहे थे। तभी उनके किसी जानकार ने लंदन के 'रॉयल एकेडमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट' में अभिनय सीख रही शिमला की एक युवती वीरा का एक फोटो उनको भेजा। फोटो चेतन को आकर्षित लगा। उन्होंने वीरा को मुंबई बुलाकर देखा तो वह बोल उठे—"वाह! ऐसी ही लड़की चाहिए थी।" बस फिर क्या था वीरा को नया नाम 'प्रिया' देकर चेतन ने उसे फिल्म की नायिका बना दिया।

चार महीनों की है प्रमुख कहानी

फिल्म की कहानी जुलाई 1962 यानी तब से आरंभ होती है जब चीन की सेना भारत पर हमले की गुपचुप तैयारी करके हमारे देश की सीमा में प्रवेश करती है, जबकि कहानी नवंबर 1962 तक चलती है, जब युद्ध समाप्त हुआ था। इन चार महीनों की कहानी के साथ 1960 और 1964 के कुछ वास्तविक दृश्यों की फुटेज को भी फिल्म में जोड़ा गया है।

फिल्म में दिखाया है कि कैप्टन बहादुर सिंह (धर्मेंद्र) लद्दाख में अपनी सैन्य टुकड़ी के प्रभारी हैं। तभी ब्रिगेडियर सिंह (जयंत) को खबर मिलती है कि चीनी सेना भारत की सीमा में धीरे-धीरे प्रवेश कर रही है। तब वह मेजर रणजीत सिंह (बलराज साहनी) को आदेश देते हैं कि अपनी टीम को भेजकर चौकियों को सुरक्षित करें। सेना इस समाचार के बाद दुश्मन से मुकाबले के लिए तैयार हो जाती है।

हालाँकि सेना के जाँबाज तब तक चीनी सेना पर हमला शुरू नहीं कर सकते जब तक उन्हें ऊपर से आदेश न मिले।

पहले हमला न करने की परंपरा

असल में इस दृश्य के बहाने आनंद ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भारत की यह परंपरा रही है कि वह कभी अपनी ओर से हमले की पहल नहीं करता। साथ ही, यह घटना बताती है कि यदि भारतीय सेना दूर से अपनी ओर आते हुए चीनी सैनिकों को देखकर उन पर हमला बोल देती तो चीन की सेना संगठित नहीं हो पाती। इससे भारत, चीन को सबक सिखाकर अपनी जीत भी दर्ज कर सकता था।

भारतीय सैनिक कहते रहे कि अब चीनी सेना सिर्फ 500 मीटर दूर है या सिर्फ 200 मीटर दूर है, लेकिन भारतीय सेना को यही आदेश दिया जाता रहा कि जब तक वे लोग फायरिंग न करें, आप पहल न करें। इसी नीति के कारण उनके सैनिक हजारों की संख्या में चारों ओर फैलते चले गए। जब चीनी सैनिकों ने पहले गोली चलाई तभी हमारे वीरों ने उन्हें जवाब दिया।

इधर भारतीय सेना के जवान कम संख्या में होने के बावजूद चीनी सैन्य बलों का मजबूती से मुकाबला करते हैं, लेकिन मौसम खराब होने से स्थिति और भी भयावह हो जाती है। कैप्टन बहादुर सिंह पूरी कोशिश करते हैं कि उनकी सेना और देश की भूमि सुरक्षित रहे, लेकिन वह शहीद हो जाते हैं।

फिल्म की कहानी में बहादुर सिंह का एक लद्दाखी लड़की अन्मो (प्रिया राजवंश) से प्रेम प्रसंग दिखाया गया है। वह प्रेम कहानी इतनी अद्भुत और मर्मस्पर्शी है कि बहादुर सिंह पूरी फिल्म में अन्मो को छूता तक नहीं है। दोनों के बीच परस्पर संवाद भी बहुत कम है। दोनों दिल से एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। अच्छे भविष्य के सपने देखते हैं। लेकिन जब अन्मो, बहादुर सिंह को युद्ध के मैदान पर अकेला लड़ता देखती है तो वह भी बंदूक उठा दुश्मन के खात्मे में उसके साथ हो जाती है।

एक-एक सैनिक सौ पर भारी

फिल्म में ऐसे कई दृश्य हैं जो बताते हैं कि हमारी जाँबाज सेना कितनी ही विकट परिस्थितियों और कितने ही शारीरिक और मानसिक कष्टों के बावजूद अपना आपा नहीं खोती। वे दृश्य झकझोर देते हैं जब दुश्मन को पराजित करने के लिए हर सैनिक अंतिम साँस तक अपना साहस नहीं छोड़ता। सैनिकों के शरीर खून से लथपथ हैं, वे भूखे-प्यासे हैं, उनके जूते फट गए हैं, पाँव गल गए हैं, लेकिन उनका शौर्य कायम है। हमारा प्रत्येक सैनिक चीनी सेना के 25-50 ही नहीं सौ-सौ सैनिकों पर भारी पड़ता है।

फिल्म में यह भी दिखाया है कि सेना में रिश्ते-नातों को भूलकर, पिता को अपने बेटे को मैदान के उस हिस्से में भेजना पड़ता है जहाँ से उसका जिंदा लौटना मुश्किल है। फिल्म में ब्रिगेडियर सिंह और कैप्टन बहादुर सिंह के बीच भी पिता-पुत्र का रिश्ता दिखाया है। वह दृश्य झकझोर कर रख देता है जब ब्रिगेडियर को दिवाली के दिन अपने बेटे बहादुर सिंह के शहीद होने का समाचार मिलता है। उसके बाद भी ब्रिगेडियर सैनिकों का हौसला बढ़ाते हुए कहते हैं—"दुश्मन के घातों को सहने वाले सिपाहियों दिवाली मुबारक। घाव सदमे मुबारक। ये काली दिवाली है, आज लक्ष्मी की नहीं, काली की पूजा करो। तभी आने वाले वर्षों में दिवाली जगमगाएगी। तुम खून की कुर्बानी दो, शहीदों का खून हमेशा रंग लाता है।"

चीन ने दोस्त बनकर कैसे कुठारघात किया, वह भी एक संवाद में कुछ इस तरह दर्शाया गया—"आज एक दोस्त ने बगल में चुरा घोंपा है। बुद्ध, अशोक, गांधी और नेहरू का हमारा देश शांति का प्रतीक जरूर है, पर यह बुज़दिली का कायल नहीं।"

चेतन आनंद की 'हकीकत' एक खूबसूरत और यादगार फिल्म होने के साथ यह भी दर्शाती है कि इस युद्ध की हार के लिए प्रधानमंत्री नेहरू को दोषी ठहराना ठीक नहीं। परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बन गई कि भारत को हार का मुँह देखना पड़ा, लेकिन सेना की यह हार भी उसकी नैतिक जीत है।

पंडित नेहरू नहीं देख सके फिल्म

हालाँकि पंडित नेहरू इस फिल्म को नहीं देख पाए। फिल्म प्रदर्शन से कुछ समय पहले ही 27 मई, 1964 को उनका निधन हो गया। चेतन को इस बात का दुख अंत तक रहा। वह हमेशा कहते थे—"काश नेहरू जी ने उनकी फिल्म 'हकीकत' को देखा होता।"

यह फिल्म व्यावसायिक रूप से भी अत्यंत सफल रही। 'हकीकत' को उस वर्ष की दूसरी सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।

चेतन आनंद ने 'हकीकत' को चीन युद्ध में शहीद हुए भारतीय सैनिकों के साथ पंडित नेहरू को भी समर्पित किया। फिल्म के आरंभ में यह बात उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखी। इतना ही नहीं चेतन ने चीन के तत्कालीन प्रधानमंत्री चाऊ एनलाई और जवाहरलाल नेहरू के वे दृश्य भी फिल्म में रखे जब इस युद्ध से दो साल पहले चाऊ भारत आए थे। यहाँ उनका शानदार स्वागत किया गया था। साथ ही, अंत में नेहरू जी की शव यात्रा के वास्तविक दृश्य भी फिल्म में हैं। तब सभी की आँखों से अश्रुधारा बह निकलती है, जब शवयात्रा के उन्हीं दृश्यों पर फिल्म का सबसे बेहतरीन गीत गूँजता है—"कर चले हम फिदा जान-ओ तन साथियो, अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो।"

सेना के शौर्य पर अन्य प्रमुख फिल्में और गीत

'हकीकत' का गीत 'अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो' सुनकर तो सेना के सम्मान में सिर झुक ही जाता है। इसके अलावा भी कुछ और गीत व फिल्में ऐसी हैं जो भारतीय सेना के शौर्य और पराक्रम के साथ-साथ उनके बलिदान की भी याद दिलाती हैं, मन में देशप्रेम और देशभक्ति का जज्बा जगाती हैं। कविवर प्रदीप का वह गीत तो अमर है ही, जो चाहे किसी फिल्म का हिस्सा नहीं रहा, लेकिन उसे सुनकर रोम-रोम सिहर उठता है। सी. रामचंद्र के संगीत में रचे इस गीत—"ए मेरे वतन के लोगों, ज़रा आँख में भर लो पानी" को जब लता मंगेशकर ने गाया था, तो वहाँ मौजूद नेहरू जी की आँखों में भी आँसू निकल आए थे।

उधर सेना को लेकर रामानंद सागर की 'ललकार' (1972), जे.पी. दत्ता की 'बॉर्डर' (1997) तथा 'एलओसी-कारगिल'(2003) और रितेश सिद्धवानी की 'लक्ष्य' (2004) जैसी कुछ और फिल्मों का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनमें 1971 के भारत-पाक युद्ध की एक सत्य कथा पर आधारित 'बॉर्डर' तो अत्यंत सफल और लोकप्रिय फिल्म रही।

साथ ही, 'हिंदुस्तान की कसम' (1973) और 'प्रेम पुजारी' (1970) के साथ सन् 2019 में प्रदर्शित फिल्म 'उरी : सर्जिकल स्ट्राइक' को भी ऐसी फिल्मों की श्रेणी में अच्छे से याद किया जाएगा।

निर्माता रॉनी स्क्रूवाला और निर्देशक आदित्य धर की 'उरी' तो 2016 में उरी हमले और उसके बाद भारतीय सेना द्वारा पाकिस्तान में घुसकर की गई सर्जिकल स्ट्राइक को लेकर बनी एक काफी अच्छी फिल्म है। करीब 25 करोड़ रुपये की लागत से बनी 'उरी' ने लगभग 340 करोड़ रुपये एकत्र कर सभी को जता दिया कि यदि सेना के पराक्रम पर अच्छी फिल्में बनें तो दर्शक ऐसी फिल्में देखना खूब पसंद करते हैं। फिल्म को सभी ने कितना सराहा, इस बात का अंदाज इससे भी लग सकता है कि 'उरी' ने चार राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीतने के साथ चार फिल्म फेयर पुरस्कार भी अपनी झोली में समेट लिए। अभिनेता विकी कौशल तो इस फिल्म से फिल्म क्षितिज पर नए सितारे के रूप में चमक उठे।

उधर 'प्रेम पुजारी' और 'हिंदुस्तान की कसम' की बात की जाए तो इन फिल्मों का निर्माण-निर्देशन भी आनंद बंधुओं ने किया था। 'हिंदुस्तान की कसम' को तो चेतन आनंद ने ही बनाया था, जबकि 'प्रेम पुजारी' को उनके छोटे भाई देव आनंद ने। फिल्म के नायक भी वह खुद ही थे। चेतन की 'हकीकत' जहाँ भारतीय सेना पर थी वहीं 'हिंदुस्तान की कसम' सन् 1971 के भारत-पाक युद्ध में पश्चिमी क्षेत्र में भारतीय वायु सेना की भूमिका और योगदान को दर्शाती है। यह फिल्म व्यावसायिक रूप से चाहे 'हकीकत' की तरह सफल नहीं रही, लेकिन अभिनेता राजकुमार के अभिनय और संवादों के कारण यह आज भी याद की जाती है। 'हकीकत' के दो प्रमुख कलाकार बलराज साहनी और प्रिया राजवंश भी इस फिल्म में थे। इस फिल्म का शीर्षक गीत भी बेहद खूबसूरत है जिसे 'हकीकत' के गीतकार कैफी आज़मी ने ही लिखा था। इसका संगीत भी दिग्गज संगीतक मदन मोहन ने दिया था। इस गीत को रफी और मन्ना डे ने इतने जोश से गाया था कि आज भी इस गीत को सुन देश के प्रति जोश उमड़ने लगता है। गीत के बोल हैं—"हिंदुस्तान की कसम, न झुकेगा सर वतन का, हर जवान की कसम"।

ताकत वतन की हमसे है

ऐसे ही 'प्रेम पुजारी' का गीत भी हमारी सेना के सैनिकों की शक्ति और साहस को इतनी खूबसूरती से व्यक्त करता है कि सेना को हजारों सलाम करने के लिए मन मचल उठता है। इस गीत को भी रफी और मन्ना डे ने गाया था, जबकि इसमें संगीत सचिनदेव बर्मन का है। महान कवि और गीतकार नीरज के लिखे इस गीत के एक-एक शब्द में भारतीय सेना का दम-खम और शौर्य साफ झलकता है।

लांस नायक अल्बर्ट एक्का जिसने गंगासागर में दिखाई थी वीरता

झारखंड की धरती अपने प्राकृतिक सौंदर्य व खान-खनिजों के लिए जितना समृद्ध है, उतना ही अपने वीर सपूतों की शौर्य गाथाओं के लिए प्रसिद्ध है। जिन्होंने अपने देश की एकता-अखंडता की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर वीरता का एक नया अध्याय लिखा, उनमें से एक हैं—लांस नायक अल्बर्ट एक्का। यह गौरव गाथा है 1971 की, जब भारत-पाक युद्ध में झारखंड की माटी के लाल लांस नायक अल्बर्ट एक्का ने अद्भुत वीरता और पराक्रम दिखाते हुए जीत का मार्ग प्रशस्त किया था। झारखंड के गुमला जिले के जारी गाँव में 27 दिसंबर, 1942 को पिता जूलियस एक्का और माता मरियम एक्का के घर जन्मे अल्बर्ट एक्का का बचपन संघर्ष में गुजरा था। इनके पिता भी सेना में थे। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लिया था। गरीबी से संघर्ष करते हुए अल्बर्ट ने माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की और राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करने हेतु भारतीय सेना में भरती हुए थे। यह संयोग ही था कि 27 दिसंबर, 1962 को अपने जन्मदिन के दिन ही भारतीय सेना में भरती हुए थे। मात्र 20 वर्ष की उम्र में सैनिक जीवन में सदा कर्तव्यनिष्ठ सिपाही की भूमिका निभाने वाले वीर अल्बर्ट एक्का ने सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध के समय अपनी वीरता का परिचय दिया। फलस्वरूप उनकी पदोन्नति लांस नायक के रूप में की गई।

अल्बर्ट एक्का में पहाड़-सी मजबूती और हार न मानने का जज्बा था। यही जज्बा उन्होंने तब दिखाया जब 1971 की लड़ाई शुरू हुई और भारतीय सेना को पूर्वी और पश्चिमी दोनों मोर्चों पर एक साथ लड़ना पड़ा। बांग्लादेश में दाखिल होने के लिए गंगासागर की लड़ाई सबसे अहम थी। वह एक खौफनाक दृश्य था, जब चारों ओर से गोलियाँ चल रही थीं। कहीं से आग के गोले निकल रहे थे, तो कहीं हैंड ग्रेनेड और मोर्टार छोड़े जा रहे थे। अल्बर्ट एक्का 'बी कंपनी' में थे, जिसका मोर्चा गंगासागर के पास रेलवे स्टेशन पर था। अल्बर्ट एक्का के 14 गार्ड्स को तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के गंगासागर में पाकिस्तानी मोर्चे को नाकाम करना था। 03 दिसंबर को 14 गार्ड्स को पूर्वी सेक्टर में

मनोज कुमार कपरदार

संप्रति : उप संपादक, राँची एक्सप्रेस (हिंदी दैनिक)।

लेखन/प्रकाशन : दो दशक से पूर्णकालिक और अंशकालिक तौर पर पत्रकारिता में सक्रिय हैं। विभिन्न विषयों पर सैकड़ों आलेख क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित। एक पुस्तक 'झारखंड दर्पण' प्रकाशित। साझा काव्य संग्रह साहित्य उदय और एकाक्ष में सहभागिता।

सम्मान : पुलिस-पब्लिक हेल्पलाइन राष्ट्रीय सम्मान, झारखंड सेवा रत्न सम्मान, साहित्य शिखर सम्मान और काव्य शिरोमणि सम्मान से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 8210924546

ईमेल– manojkapardarjh@gmail.com

> **लांस नायक अल्बर्ट एक्का ने यह देखा कि शत्रु की हलकी मशीनगन उनके सैनिकों को भारी संख्या में हताहत कर रही है तो उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा की जरा भी परवाह न करते हुए बंकर पर धावा बोल दिया और अपनी संगीन से शत्रु के दो सैनिकों को मारकर इसका मुँह बंद कर दिया। यद्यपि इस मुठभेड में वे गंभीर रूप से घायल हो गए थे, फिर भी वे अदम्य साहस का परिचय देते हुए अपने साथियों को साथ लेकर एक बंकर से दूसरे बंकर में शत्रुओं का सफाया करते हुए निर्धारित लक्ष्य की ओर एक मील तक बढ़ते चले गए।**

अगरतला से 6.5 किलोमीटर पश्चिम में गंगासागर में पाकिस्तान की रक्षा पंक्ति पर कब्जा करने का आदेश मिला। दुश्मन ने इस इलाके में मजबूत मोर्चाबंदी कर रखी थी जिस पर नियंत्रण करना बहुत ही आवश्यक था। लांस नायक अल्बर्ट एक्का पूर्वी मोर्चे पर गंगासागर पर शत्रु की सेना पर आक्रमण करने वाले गार्ड्स ब्रिगेड की बटालियन की एक कंपनी में सबसे आगे बायीं ओर थे। शत्रु ने भारी सैन्य शक्ति के साथ स्थान की किलेबंदी कर रखी थी। धावा बोलने वाली इस कंपनी पर यद्यपि शत्रु की ओर से भारी तथा छोटे हथियारों से काफी गोलाबारी हुई, फिर भी उसने अपने निर्धारित लक्ष्य पर धावा बोल दिया और भीषण मुठभेड़ हुई। लांस नायक अल्बर्ट एक्का ने यह देखा कि शत्रु की हलकी मशीनगन उनके सैनिकों को भारी संख्या में हताहत कर रही है तो उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा की जरा भी परवाह न करते हुए बंकर पर धावा बोल दिया और अपनी संगीन से शत्रु के दो सैनिकों को मारकर इसका मुँह बंद कर दिया। यद्यपि इस मुठभेड में वे गंभीर रूप से घायल हो गए थे, फिर भी वे अदम्य साहस का परिचय देते हुए अपने साथियों को साथ लेकर एक बंकर से दूसरे बंकर में शत्रुओं का सफाया करते हुए निर्धारित लक्ष्य की ओर एक मील तक बढ़ते चले गए। लक्ष्य के उत्तरी ओर से शत्रु की एक मीडियम मशीनगन एक सुरक्षित इमारत की दूसरी मंजिल से भारी गोलीबारी कर रही थी, जिससे हमारे सैनिक भारी संख्या में हताहत हो रहे थे और वे आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। गंभीर रूप से घायल होने के बावजूद एक बार फिर वह वीर सैनिक आगे उस इमारत तक पहुँचा और धीरे से ऊपर एक बंकर के छेद में से एक ग्रेनेड फेंक कर शत्रु के एक सैनिक को मार गिराया और दूसरे को घायल कर दिया।

उस मशीनगन से भी गोलीबारी जारी रही। उत्कृष्ट साहस तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का परिचय देते हुए लांस नायक अल्बर्ट एक्का ने उस इमारत की एक दीवार को लाँघा और बंकर में प्रवेश करके शत्रु के उस एक सैनिक को जो कि अभी तक गोलीबारी कर रहा था, संगीन से मार गिराया। इस प्रकार उन्होंने उस मशीनगन का भी मुँह बंद कर दिया और कंपनी के और सैनिकों को हताहत होने से बचा लिया और आक्रमण को सफल बनाया। इस कार्रवाई में वे गंभीर रूप से घायल हुए और अपने लक्ष्य को पूरा करने के बाद वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी इस वीरता के कारण ही पाकिस्तानी फौज अगरतला में नहीं घुस सकी और भारतीय सेना अपनी योजना में सफल रही। उनकी इसी उत्कृष्ट वीरता के लिए ही उन्हें मरणोपरांत परमवीर चक्र मिला था। राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने उनके सम्मान में प्रशस्ति पत्र भी दिया था। वर्ष 2000 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर इनकी स्मृति में डाक टिकट भी जारी किया गया।

परमवीर चक्र विजेता कैप्टन विक्रम बत्रा

लगभग 200 वर्ष तक अंग्रेजों की दासता झेलने के बाद भारत ने 15 अगस्त, 1947 को आजादी का सूरज देखा। लेकिन आजादी के पहले ही देश के विभाजन की दास्ताँ लिख दी गई, जिसके कर्णधार थे लॉर्ड माउंटबेटन। माउंटबेटन योजना के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के तहत देश का विभाजन किया गया और पंजाब को विभाजित कर पाकिस्तान बना दिया गया। इस विभाजन ने न केवल हिंदुस्तान के दो टुकड़े कर दिए, बल्कि बंगाल के विभाजन की नींव रख दी। इस विभाजन में रेलवे, सेना और धरोहरों का भी बँटवारा हो गया।

सुदर्शन वशिष्ठ

जन्म : 24 सितंबर, 1949, पालमपुर (हिमाचल)।

संप्रति : पूर्व उपाध्यक्ष/सचिव हिमाचल अकादमी तथा उप निदेशक संस्कृति विभाग।

संपादन एवं प्रकाशन : 125 से अधिक पुस्तकों का संपादन/लेखन। हिमाचल की संस्कृति पर विशेष लेखन में 'हिमालय गाथा' नाम से सात खंडों में पुस्तक शृंखला के अतिरिक्त संस्कृति व यात्रा पर 20 पुस्तकों के अलावा पाँच ई-बुक्स प्रकाशित।

पुरस्कार : 'व्यंग्य यात्रा सम्मान' सहित कई स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। अमर उजाला गौरव सम्मान, हिंदी साहित्य के लिए हिमाचल अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'शिखर सम्मान' से 2017 में सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9418085595

ईमेल– vashishthasudarshan@gmail.com

सीरिल रैडक्लिफ को ब्रिटिश हुकूमत ने भारत-पाकिस्तान के विभाजन रेखा की जिम्मेदारी सौंप दी। विभाजन रेखा से दोनों मुल्कों के लोगों का अपने-अपने देश के प्रति राष्ट्रप्रेम और एक-दूसरे के प्रति घृणा का भाव स्फुटित होने लगा।

समय-समय पर पाकिस्तान, भारत को आँख दिखाता रहा है जिसकी परिणति 1965, 1971 और फिर 1999 के युद्ध के रूप में हुई। तीनों युद्धों में ही पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी, लेकिन जान-माल का नुकसान दोनों देशों को उठाना पड़ा। ऐसे ही 1999 में हुए कारगिल युद्ध में भी देश के कई जवानों ने शहादत दी। उनमें से एक थे–कैप्टन विक्रम बत्रा। उन्होंने अदम्य साहस दिखाते हुए श्रीनगर-लेह मार्ग के ठीक ऊपर सबसे महत्वपूर्ण '5140 चोटी' को पाक सेना से मुक्त कराया और कारगिल की 'चोटी प्वाइंट 4875' पर विजय पताका फहराई।

विक्रम बत्रा का जन्म 09 सितंबर, 1974 को पालमपुर, हिमाचल प्रदेश में हुआ। उनका बचपन का नाम 'लव' था। पिता गिरधारी लाल और माता कमला बत्रा के घर दो बेटियों के बाद जुड़वाँ बेटों ने जन्म लिया जिनके नाम 'लव' और 'कुश' रखे गए। इनके पिता सरकारी स्कूल में प्रधानाचार्य थे और माता अध्यापक।

विक्रम बत्रा की स्कूली शिक्षा डी.ए.वी. स्कूल और केंद्रीय विद्यालय पालमपुर में हुई। 12वीं के बाद विक्रम बत्रा ने डी.ए.वी. कॉलेज चंडीगढ़ से विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद इन्होंने

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में एम.ए. अंग्रेजी में दाखिला लिया। वे टेबल टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे और उन्होंने स्कूल का प्रतिनिधित्व भी किया। 18 वर्ष की आयु में इन्होंने नेत्रदान का निर्णय लिया और नेत्र बैंक का कार्ड हमेशा अपने पास रखते थे। कॉलेज के दिनों में ये एन.सी.सी. में थे और एन.सी.सी. कैडेट के रूप में गणतंत्र परेड में हिस्सा लिया।

सन् 1995 में इन्हें हाँगकांग मुख्यालय वाली शिपिंग कंपनी में मर्चेंट नेवी के लिए भी चुन लिया गया था, किंतु इन्हें देश की सेवा में जाना था, अतः जून 1996 में आई.एन.ए. में चयनित हो गए। जुलाई 1996 में उन्होंने भारतीय सैन्य अकादमी, देहरादून में प्रवेश लिया। 06 दिसंबर, 1997 को उन्हें जम्मू के सोपोर में भारतीय सेना की '13 जम्मू-कश्मीर राइफल्स' में लेफ्टिनेंट के पद पर नियुक्ति मिल गई। उन्होंने जनवरी 1999 में कर्नाटक के बेलगाम में कमांडो कोर्स का प्रशिक्षण भी लिया।

वास्तव में शिमला समझौता, 1972 के अनुसार भारत और पाकिस्तान, दोनों देशों की सेनाएँ सर्दियों में पीछे हट जाती थीं और गर्मियाँ आने पर पुनः अपने-अपने स्थानों पर आ जातीं। सर्दियों में कारगिल के आस-पास ऊँची चोटियों का तापमान -60° डिग्री तक गिर जाता था, किंतु 1999 में पाकिस्तान ने इस क्षेत्र की चोटियों पर अपना कब्जा जमा लिया। फलतः अपनी सीमाओं से पाकिस्तान को हटाने के लिए यह युद्ध लड़ना अनिवार्य हो गया।

कारगिल, द्रास के नाम पहले नहीं सुने थे। भारतीय भाषा संस्थान ने भाषायी सर्वेक्षण का काम शुरू किया तो उसने कारगिल

और द्रास क्षेत्रों की भाषाओं का काम भी हाथ में लिया। उसके बाद कारगिल के नीचे बौद्ध मठों में जाना हुआ। कारगिल विजय के बाद एक सेमिनार में वहाँ जाना हुआ। नेशनल हाईवे-1 से होते हुए उस समय भारत की अंतिम चौकी तक जाने का अवसर मिला। सितंबर के दिनों में ये गगनचुंबी चोटियाँ रूखी-सूखी थीं।

यह युद्ध 20 मई, 1999 से 26 जुलाई, 1999 तक चला। हालाँकि पर्वत के दूसरी ओर ऊँचाई पर होने से पाकिस्तान सुदृढ़ स्थिति में था। भारत को भी तीन दिशाओं से हमला करना पड़ा। 01 जून, 1999 को विक्रम बत्रा को सैन्य टुकड़ी के साथ कारगिल की ऐतिहासिक लड़ाई के लिए भेजा गया। इन्होंने हम्प और रॉकी नाब को फतह किया जिसके बाद इन्हें कैप्टन बना दिया गया। इसके बाद इन्हें श्रीनगर-लेह मार्ग पर '5140 चोटी' को पाक सेना से मुक्त करवाने की जिम्मा दिया गया जिस पर इन्होंने 20 जून, 1999 की सुबह साढ़े तीन बजे कब्जा जमाकर अपनी बहादुरी का परिचय दिया। इस चोटी पर भारतीय ध्वज के साथ इनका फोटो मीडिया में आ जाने से सभी इनकी वीरता और उत्साह के कायल हो गए।

इस विजय के 13 दिन बाद भारतीय सेना ने चोटी 'प्वाइंट 4875' को अपने अधिकार में लेने का अभियान छेड़ा और कैप्टन विक्रम बत्रा को यह दुष्कर कार्य सौंपा गया। यही स्थल विक्रम बत्रा के युद्ध का स्थल बना। यह क्षेत्र अति दुर्गम था। कैप्टन विक्रम बत्रा ने अपनी जान की परवाह न करते हुए लेफ्टिनेंट अनुज नायर के साथ कई पाकिस्तानी सैनिकों को मार गिराया। इसी समय लेफ्टिनेंट नवीन घायल हो गए। उन्हें बचाने के लिए विक्रम बत्रा बंकर से बाहर आ गए। उसी समय दुश्मनों की गोली बत्रा के सीने में आ लगी और 'जय माता दी' कहते हुए शहीद हो गए। उनकी सैन्य टुकड़ी ने चोटी 'प्वाइंट 4875' पर विजय पा ली। कैप्टन विक्रम बत्रा जब शहीद हुए तो उनकी उम्र मात्र 24 साल की थी।

इस अदम्य साहस और बलिदान के कारण कैप्टन विक्रम बत्रा को मरणोपरांत 15 अगस्त, 1999 को परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया। यह सम्मान महामहिम राष्ट्रपति से उनके पिता गिरधारी लाल बत्रा ने प्राप्त किया।

भारतीय वायुसेना नवाचार का अभिनंदन

'नवाचार' का औपचारिक अर्थ किसी नए उपकरण या प्रक्रिया को बनाना होता है, लेकिन इसका प्रयोग अनौपचारिक प्रसंग में भी किया जा सकता है जिसके लिए भारत में अत्यंत प्रचलित शब्द 'जुगाड़' है, जिसका अर्थ होता है किसी चुनौती या समस्या के तात्कालिक समाधान के लिए किसी उपलब्ध उपकरण या प्रक्रिया का अनूठा प्रयोग और बाद में यह आगे के विकास का आधार बनता है।

जब भारतीय वायुसेना की बात आती है तो इसने नवाचार का प्रयोग इसके दोनों अर्थों में बखूबी किया है। यहाँ हम इस शब्द का प्रयोग विशेष रूप से इसके अनौपचारिक अर्थ में कर रहे हैं। इस गौरवशाली बल ने 1932 में अपनी स्थापना काल से ही विश्व की अग्रणी बनने की महत्वाकांक्षा दर्शाई है।

ए.के. गांधी

लेखक वर्ष 1995 में भारतीय वायुसेना से सेवानिवृत्ति लेने के पश्चात से स्वतंत्र लेखक और अनुवादक के रूप में स्थापित हैं और दोनों क्षमताओं में देश के प्रतिष्ठित प्रकाशनों से उनकी लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वह हिंदी व अंग्रेजी दोनों में लेखन कार्य करते हैं। उनकी मुख्य रुचि इतिहास, साहित्य और व्याकरण में है। writerakgandhi.blogspot.in उनका लोकप्रिय ब्लॉग है। उनका निवास मेरठ, उ.प्र. में है।

संपर्क : मोबाइल– 7500313951

ईमेल– akganndhi@yahoo.co.in

यद्यपि उस समय वह अंग्रेजों के अधीन थी और इसे उन पुराने वायुयानों और उपकरणों से लैस किया गया था जो उनकी मुख्य सेना का भाग बनने के उपयुक्त नहीं समझे गए थे। लेकिन भारतीय वायुसैनिकों ने इन्हीं का प्रयोग कर श्रेष्ठता के नए मानदंड स्थापित किए जिसके कारण अंग्रेजों को भी मजबूर होकर मात्र 13 वर्ष बाद ही इसे द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेने के योग्य मानना पड़ा और इसका विस्तार किया गया। यह विस्तार कोई अंग्रेजों की कृपा नहीं थी, बल्कि भारतीय वायुसेना ने स्वयं को अपनी नवाचार की अभिवृत्ति के माध्यम से इसे विदेशी शासकों की आँखों में भी स्वयं को प्रासंगिक बना लिया था। यह नवाचार की संस्कृति आज तक जारी है और इसके कारण इसने अनेक बार शत्रुओं को भौचक्का किया है और सामने आने वाली चुनौतियों का सामना संसाधनों के अभाव के बाद भी सफलतापूर्वक किया है।

हमारे अर्थ में नवाचार का प्रयोग प्राचीनकाल में उसी समय हो गया होगा जब दो समूह आपस में भिड़े होंगे और उनमें से कुछ ने पत्थरों, लकड़ियों आदि का प्रयोग किया होगा। शस्त्रों के इसी आदिम प्रयोग का विकास धीरे-धीरे आधुनिक सैनिक तकनीकी के रूप में हुआ।

दोनों पक्षों में समान अस्त्र-शस्त्र होने पर तकनीकी का बेहतर या ऐसा प्रयोग नवाचार कहलाता है जिसके लिए वह न बनी हो। इस प्रकार के प्रयोग प्राचीनकाल से ही हुए हैं। उदाहरणार्थ, प्राचीनकाल में गुलेलों का प्रयोग भी होता था जिसमें बाँस की लचीली खपच्ची में रस्सी बाँधकर छोटे पत्थर फेंके जाते थे, लेकिन अजातशत्रु का काल आते-आते इसमें नवाचार हुआ और अब पेड़ों की V-आकार की डालियों के माध्यम से रबर की रस्सियों से बड़े पत्थर फेंकने आरंभ हो गए, और इनका प्रयोग मध्यकाल में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने किलों को ध्वस्त करने के लिए किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक समय का नवाचार भविष्य की उन्नत तकनीकी का आधार बनता है। नवाचार मात्र उपस्थित अस्त्र-शस्त्र के अनूठे व नवीन प्रयोग तक ही सीमित नहीं है, यह युद्ध

नवाचार के प्रयोग में भारतीय वायुसेना ने अत्यंत प्रवीणता प्राप्त की है। इस तकनीकी बल को नवाचारों का प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक करना होता है क्योंकि तीव्रगामी वायुयानों में इसके अन्यथा परिणाम भी हो सकते हैं। स्वतंत्रता के समय होने वाले विभाजन के कारण वायुसेना की शक्ति बुरी तरह प्रभावित हुई थी क्योंकि पाकिस्तानी क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुविधाएँ स्थित थीं, जबकि देश की सुरक्षा आवश्यकताएँ बढ़ रही थीं और घुसपैठ का सामना भी करना पड़ रहा था, और इसे नए वायुयानों और उपकरणों की आवश्यकता थी जो आसानी से उपलब्ध नहीं थे।

प्रणाली व नीति को भी अपने में समाहित करता है जिसके कारण किसी युद्ध की विवेचना बहुत ही रोचक हो जाती है, जैसे—जब राणा प्रताप का सामना अधिक शक्तिशाली शत्रु से होता, वह पीछे हटकर शत्रु की आपूर्ति रेखा लंबी कर देते और सुनिश्चित करते कि कोई स्थानीय रसद शत्रु को प्राप्त न हो, और वह स्वयं गुरिल्ला युद्ध का प्रयोग कर आपूर्ति रेखा पर चोट करते थे। इस नीति का व्यापक प्रयोग आगे चलकर शिवाजी और छत्रसाल ने अत्यंत प्रवीणता से किया। इस प्रकार, जीवन के विभिन्न पक्षों में नवाचार अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और युद्ध जैसी स्थिति में जीवनदायक और विजयप्रदायक की भूमिका भी निभाते हैं।

नवाचार के प्रयोग में भारतीय वायुसेना ने अत्यंत प्रवीणता प्राप्त की है। इस तकनीकी बल को नवाचारों का प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक करना होता है क्योंकि तीव्रगामी वायुयानों में इसके अन्यथा परिणाम भी हो सकते हैं। स्वतंत्रता के समय होने वाले विभाजन के कारण वायुसेना की शक्ति बुरी तरह प्रभावित हुई थी क्योंकि पाकिस्तानी क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुविधाएँ स्थित थीं, जबकि देश की सुरक्षा आवश्यकताएँ बढ़ रही थीं और घुसपैठ का सामना भी करना पड़ रहा था, और इसे नए वायुयानों और उपकरणों की आवश्यकता थी जो आसानी से उपलब्ध नहीं थे। इस कमी को पूरा करने के लिए स्वतंत्र भारत में वायुसेना ने पहला नवाचार किया जिसने विश्व के सामरिक विशेषज्ञों को भी चौंका दिया। वह था द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका द्वारा प्रयुक्त पुराने तथा खराब बी-24 बमवर्षक वायुयानों से कलपुर्जे निकालकर कुछ नए विमानों को बनाना। इसके लिए वायु सेना ने हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट (अब हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड) से इस प्रयोजन का अनुबंध किया। इस पर अमेरिका तथा ब्रिटेन सहित अनेक देशों ने आश्चर्य व्यक्त किया कि ऐसा किस प्रकार किया जा सकता था। लेकिन नवंबर 1948 तक इन खराब विमानों से पहले छह भारी बमवर्षक विमान न केवल तैयार कर लिए गए, बल्कि उन्हें संक्रियात्मक कार्य में भी लगाया गया। स्वतंत्र भारत में नवाचार को पहली सफलता प्राप्त हो चुकी थी, इसलिए और भी नवाचारों के लिए प्रेरणा मिलना स्वाभाविक था।

सन् 1947-48 में पाकिस्तानी घुसपैठ का सामना करने के लिए जम्मू में कच्ची मिट्टी को समतल करते हुए रनवे को बनाया गया था और वायुयान इसी पर उतर जाते थे। आप कल्पना कर सकते हैं कि जब वायुयान अपने भार और बल के साथ इस पर उतरता होगा तो दुर्घटना होने की संभावना कितनी अधिक रहती होगी। रात्रि अभियानों के लिए समुचित प्रकाश व्यवस्था भी नहीं थी तो उसके लिए रनवे के दोनों ओर मात्र लालटेन रख दी जाती थी। तीव्रगामी वायुयान के लिए यह कितना जोखिम-भरा हो सकता है, उसका कुछ अनुमान आप गड्ढे-युक्त सड़क पर रात में बिना हेडलाइट तेज गति से कार चलाकर लगा सकते हैं। केवल यही नहीं, जम्मू हवाई पट्टी की लंबाई कम थी और वायुयानों की क्षमता से अधिक उसमें बमों का प्रयोग किया जाता था, और परिस्थिति तब और भी खतरनाक हो गई जब 1000 पाउंड के बमों के प्रयोग का निश्चय किया गया। तब वायुयान रनवे के छोर पर लगी बाड़ से जरा पहले ही हवा में उठ पाते थे, वह भी तब जब वे फिल्टर का प्रयोग नहीं करते थे। फिल्टर का प्रयोग करने से 1000 पाउंड के बमों को ले जाना संभव नहीं था, इसलिए पायलट जोखिम उठाते थे।

कश्मीर में सँकरी घाटियाँ हैं जिनमें वायुयानों के प्रयोग से वायुयान निर्माता और सामरिक विशेषज्ञ भी मना करते थे, लेकिन समय की आवश्यकता थी कि वहाँ बैठे शत्रु को मार भगाया जाए, और इसके लिए पायलटों ने एक नई युक्ति को प्रयोग में लाना आरंभ किया जिसमें सामने पहाड़ी पर बैठे शत्रु पर बम बरसाने के लिए उसकी ओर उड़ते हुए तेजी से ऊपर की ओर गोता लगाते हुए उस समय लक्ष्य पर बम गिराए जाते थे जब लक्ष्य आँखों के सामने नहीं होता था। यह नवाचार पर्याप्त सफल हुआ और आने वाले समय में लगभग यही उपाय कारगिल युद्ध में भी अपनाया गया।

सन् 1965 के युद्ध में, 2 सितंबर को पाक सेना ने चार भारतीय वेंपायर विमानों को मार गिराया था, जिसका प्रतिशोध हमारे पायलट कम-से-कम एक सैबर विमान को मारकर लेना चाहते थे, लेकिन प्रश्न था कि सैबर को किस प्रकार बाहर लाया जाए। इसके लिए योजना बनी व दो मिस्टीअर विमानों को 20,000 फुट पर उड़ान भरते हुए छंब सेक्टर में भेजा गया जिनकी सुरक्षा में पेड़ों की ऊँचाई पर नीची उड़ान भरते चार नैट विमान थे। इन दो विमानों को जैसे ही पाकिस्तानी रडारों ने पकड़ा, एक सैबर जैट आकाश में आया। योजनानुसार, यह वह समय था जब मिस्टीअर विमानों को गोता खाकर वापस आ जाना था तथा नैटों द्वारा इस सैबर जैट को घेर लेना था। यही किया गया तथा वांछित परिणाम प्राप्त हुआ।

यदि नवाचार का श्रेष्ठ उदाहरण देना हो तो वह 1971 का युद्ध था जिसमें पाकिस्तानी वायुसेना ने भारत द्वारा अवाक्स (AWACS) विमान के प्रयोग की बात कही थी, लेकिन भारत के पास तो यह था नहीं, फिर शत्रु को यह भ्रम किस प्रकार हुआ? वास्तव में, भारतीय बमवर्षक विमान मध्य रात्रि को पाकिस्तान में गहरे घुसकर हमले किया करते थे, तथा इस दौरान वे किसी प्रकार के रेडियो संचार का प्रयोग नहीं किया करते थे। घोर अंधकार में वे बहुत नीची उड़ान भरते थे ताकि शत्रु के रडार उन्हें पकड़ न पाएँ, इस प्रक्रिया में अधिक ईंधन की खपत होती है। इस कारण उनके पास ईंधन की कमी हो जाती थी तथा वापसी में उनके पास इतना समय नहीं होता था कि वे भारतीय ए.टी.सी. को अपनी पहचान बता पाएँ। समाधान हेतु इसके लिए एक 'बेहतर उपाय' खोज लिया गया, जिसके अंतर्गत एक विमान सीमा पर उड़ता रहता था तथा वही इन बमवर्षकों तथा ए.टी.सी. के मध्य संपर्क-सूत्र का काम करता था तथा इन्हें वापसी में निर्देश देता था क्योंकि अंधकार में कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था। इसी नवाचार को पाकिस्तान ने अवाक्स समझा।

इस युद्ध में पाकिस्तान ने हवाई अड्डों व महत्वपूर्ण ठिकानों पर विमानरोधी तोपें (ack-ack) तैनात की थीं, जिनके कारण भारतीय मिग-21 विमानों को अधिक ऊँचाई पर उड़ान भरनी होती थी, लेकिन इसके कारण लक्ष्यबेधन करना अनिश्चित हो जाता था। सो नवाचार का प्रयोग करते हमारे विमान ऊँचाई से तेजी से गोता मारते हुए रनवे के ऊपर आते तथा बमों को गिराते हुए तीव्रता से दायें या बायें मुड़कर विमानरोधी तोपों की मार से बाहर चले जाते थे। यह युक्ति अचूक थी, लेकिन इसमें वायुयान का जमीन से टकराने का भरपूर खतरा होता था, लेकिन हमारे पायलटों ने इस युक्ति को इतना प्रभावी बनाया कि पाकिस्तानी समझते थे कि हमारे विमानों में 'लेजर गन साइट' लगी हुई हैं, जो सत्य नहीं था।

आपको एक ऐसे नवाचार के बारे में बताते हैं जो विश्व भर में प्रसिद्ध हुआ। 14 दिसंबर, 1971 प्रातः 10.45 बजे एक पाकिस्तानी गुप्त संदेश पकड़ा गया कि ढाका स्थित सर्किट हाउस में महत्वपूर्ण व्यक्तियों की बैठक होनी थी जिसमें वहाँ के गवर्नर जनरल टिक्का खान आदि सम्मिलित होने थे। पायलटों को निर्देश दिया गया कि इस इमारत पर 11.20 पर बमबारी की जाए और नक्शे के नाम पर उन्हें एक पर्यटक नक्शा दे दिया गया। विमानों द्वारा प्रयुक्त नक्शे बहुत विशिष्ट होते हैं, जबकि पर्यटन हेतु नक्शे बहुत साधारण। लेकिन हमारे जाँबाज पायलटों ने उसी का प्रयोग करने की ठानी। अभी वे विमान में बैठकर इंजन चालू ही कर पाए थे कि उन्हें बताया गया कि बैठक गवर्नमेंट हाउस में थी। नेतृत्व कर रहे पायलट ने अपनी गोद में रखे पर्यटक नक्शे पर उसे भी खोज निकाला। ठीक समय पर उन्होंने 128 रॉकेटों की सहायता से लक्ष्य को भेद दिया। मात्र 35 मिनटों में हमारे पायलटों ने शक्ति तथा नवाचार की क्षमता दर्शा दी थी। इस इमारत के भीतर क्या हो रहा था, यह भी जानना रोचक होगा। पूर्वी पाकिस्तान के गवर्नर डॉ. मलिक पहला रॉकेट गिरते ही बंकर में चले गए तथा सबसे पहले अपना त्यागपत्र लिखा। यह एक नाटकीय घटना थी। मात्र तीन दिन पहले 13 दिसंबर को जनरल नियाजी ने कहा था कि वह भारतीय सेना से महीनों तक टक्कर लेने को तैयार हैं, और जब इतनी जल्दी आत्मसमर्पण करने का कारण पूछा गया तो भावना में बहकर वह कुछ बोल नहीं पाए, बस वहाँ उपस्थित एक भारतीय वायुसेना के अधिकारी की ओर इशारा मात्र कर पाए।

कारगिल युद्ध में भी कुछ नवाचारों का प्रयोग किया गया। ऊँचे पहाड़ों की तीव्र ढलानों में बंकर और संगर किसी भी वायुसेना के लिए कठिन लक्ष्य हो सकते हैं। आरंभिक कठिनाइयों से पार पाने के बाद पाया गया कि लेजर बम से ही इनका बेधन हो सकता था, लेकिन न्यूक्लियर बम के परीक्षण के बाद लगने वाले प्रतिबंधों के कारण मिराज-2000 में लेजर बम छोड़ने के लिए एक विशेष पुर्जे को आयात नहीं किया जा सकता था। नवाचार करते हुए इस पुर्जे को हमारे तकनीशियनों ने ही बना डाला और परिणाम आप सब जानते ही हैं। हमारी वायुसेना ने शत्रु के ठिकानों को किस प्रकार 'कोमल' कर दिया था, उसका अनुमान उन संदेशों से लगाया जा सकता है जो बंकरों में बैठे घुसपैठिए अपने आकाओं को भेज रहे थे।

न केवल युद्धकाल में, बल्कि शांतिकाल में भी भारतीय वायुसेना ने नवाचारों के नए मानदंड स्थापित किए हैं। अकसर पर्वतारोहियों, बाढ़-पीड़ितों और दुर्गम क्षेत्रों में विभिन्न विभागों के तकनीकी कर्मियों की सहायता के लिए अनेक प्रकार के नवाचारों का प्रयोग किया जाता है। सभी प्रकार के नवाचारों का उल्लेख करना न संभव है और न ही वांछनीय, लेकिन आप पूरी तरह आश्वस्त हो सकते हैं कि वायुसेना आपकी सुरक्षा में तत्पर खड़ी है, सर्वदा, सर्वदा।

एनसीसी की यात्रा एक सर्वेक्षण

राष्ट्रीय कैडेट कोर (एनसीसी) भारतीय सैन्य कैडेट कोर है। एनसीसी तीनों सेनाओं—थल सेना, वायु सेना और नौसेना का त्रिकोणीय सेवा संगठन है जो देश के युवाओं के अनुशासित जीवन को सँवारने में तत्पर है। राष्ट्रीय कैडेट कोर विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के कैडेटों का एक स्वैच्छिक संगठन है। यहाँ कैडेटों को बुनियादी सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय कैडेट कोर संगठन की उत्पत्ति 'यूनिवर्सिटी कोर' के रूप में हुई जिसका गठन सैनिकों की कमी को पूरा करने के लिए किया गया। एनसीसी 15 जुलाई, 1948 को, पंडित हृदयनाथ कुंजरू समिति की सिफारिश पर 1948 के राष्ट्रीय कैडेट कोर के 31वें अधिनियम के तहत अस्तित्व में आई। वर्ष 1948 में एनसीसी कैडेटों की संख्या मात्र बीस हजार थी। इस समय इसके कैडेटों की संख्या 13 लाख से ऊपर है।

रेनू सैनी

संप्रति : हिंदी कमेंटेटर एवं एंकर, देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तीन हजार से अधिक रचनाओं का प्रकाशन।

प्रकाशन : दिशा देती कथाएँ, बचपन का सफर, बचपन मुस्काया जब इन्हें सुनाया, महात्मा गांधी के प्रेरक प्रसंग, संत कथाएँ मार्ग दिखाएँ, कलाम को सलाम, सक्सेस गीता-सफल जीवन के 125 मंत्र, जीवनधारा, डायमंड लाइफ, मोदी सक्सेस गाथा, दिल्ली चलो आदि।

पुरस्कार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम मेमोरियल अवॉर्ड तथा बाल साहित्य सम्मान से सम्मानित।

संपर्क : saini.renu830@gmail.com

छात्रा विंग

एनसीसी संगठन में छात्रा विंग की चार यूनिटों को बंबई, पश्चिम बंगाल, पूर्वी पंजाब एवं केंद्रीय सूबा (अब मध्य प्रदेश) में खोला गया। इनमें छात्रा कैडेटों के लिए प्रशिक्षण प्रदान करने का उद्देश्य उनके व्यक्तित्व का समुचित निर्माण, आत्मविश्वास, नेतृत्व की भावना कायम करना था।

वायुसेना विंग का निर्माण

राष्ट्रीय कैडेट कोर के लिए वर्ष 1950 अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि इस वर्ष एनसीसी में एयर विंग को शामिल किया गया था।

नौसेना विंग का निर्माण

राष्ट्रीय कैडेट कोर में नौसेना विंग को जुलाई 1952 में शामिल किया गया।

एनसीसी में इन विंगों को शामिल करने के प्रति यह धारणा कायम थी कि इसके माध्यम से देश के अनेक स्कूलों एवं कॉलेजों के छात्र व छात्राओं को एनसीसी कैडेट बनाए जाने में सहजता रहेगी और अधिक-से-अधिक विद्यार्थी एनसीसी संगठन से जुड़ेंगे। यह धारणा सत्य साबित हुई।

एनसीसी ध्वज का चुनाव

एनसीसी ध्वज को सर्वप्रथम 1951 में लाया गया। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन हुए और 1954 में तीन रंगों वाले ध्वज को एनसीसी ध्वज चुना गया। इस ध्वज के अंदर तीनों सेनाओं को प्रदर्शित करने वाले रंगों का चुनाव किया गया। लाल रंग थल सेना को, गहरा नीला नौ सेना को एवं हलका नीला वायुसेना को प्रदर्शित करता है।

एनसीसी मोटो का चुनाव

एनसीसी संगठन एक वृहत् स्वरूप लेने लगा था। इसलिए इसके मोटो की अनिवार्यता महसूस की जाने लगी थी। बहुत विचार-विमर्श करने के बाद केंद्रीय सलाहकार समिति द्वारा 12 अक्तूबर, 1980 को 'एकता एवं अनुशासन' को एनसीसी का मोटो चुना गया।

एनसीसी गीत का चुनाव

प्रारंभ में एनसीसी संगठन में 'कदम मिला के चल' को एनसीसी गीत चुना गया, लेकिन

बाद में यह महसूस हुआ कि यह गीत एनसीसी के युवाओं की कल्पना पर खरा साबित नहीं होता। इसलिए इस दौरान अधिकारियों ने अनेक विचार-विमर्श किए। अनेक विद्वजनों को एनसीसी गीत चुनने के लिए कहा गया। सब पड़ावों को पार करने के बाद "हम सब भारतीय हैं" को एनसीसी गीत चुना गया।

एनसीसी के उद्देश्य

1. देश के युवाओं में चरित्र, अनुशासन, नेतृत्व, धर्मनिरपेक्षता, साहस एवं निस्वार्थ भाव से सेवा की भावना उत्पन्न करना।
2. युवाओं में मानवीय मूल्यों का विकास एवं सृजन कर उन्हें ऐसा प्रशिक्षण देना जिससे वे जीवन के हर मोड़ पर नेतृत्व कर हमेशा देश की सेवा के लिए उपस्थित रहें।
3. युवाओं के सामने एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिससे कि वे सशस्त्र सेनाओं में अपना करिअर बनाने के लिए आकर्षित हों।

संगठन

1. एनसीसी संगठन रक्षा मंत्रालय के अंतर्गत आता है। रक्षा सचिव एनसीसी संगठन से संबंधित विषयों को कुशलतापूर्वक देखते हैं।
2. एनसीसी अर्थात राष्ट्रीय कैडेट कोर संगठन के मुखिया महानिदेशक हैं जो लेफ्टिनेंट जनरल रैंक के सेना अधिकारी होते हैं। एनसीसी संगठन के मुखिया एनसीसी से संबंधित सभी गतिविधियों की देख-रेख करते हैं। एनसीसी संगठन का मुख्यालय दिल्ली के आर.के. पुरम में स्थित है। महानिदेशक दिल्ली के कार्यालय से सभी निदेशालयों का संचालन करते हैं। इस समय एनसीसी के महानिदेशक ले. जनरल गुरबीरपाल सिंह हैं।

एनसीसी कैडेटों के लिए रोजगार के अवसर

वर्तमान समय में एनसीसी युवाओं के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। अनेक भूतपूर्व एनसीसी कैडेट आज उच्च पदों पर आसीन हैं। एनसीसी कैडेटों ने हर क्षेत्र में अपनी एक अलग पैठ

बनाई है। राजनीति, सिनेमा, खेल, सेना आदि में अनेक एनसीसी कैडेट हैं जिन्होंने न सिर्फ एनसीसी का नाम रोशन किया है, अपितु संपूर्ण देश का नाम भी रोशन किया है। एनसीसी कैडेटों को केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं अनेक निजी कंपनियों द्वारा विशेष छूट प्रदान की जाती है। यह छूट रोजगार, नकद पुरस्कार, शैक्षिक क्षेत्र मेडल एवं ट्रॉफी के माध्यम से कैडेटों को दी जाती है।

राज्य सरकार द्वारा भी सुविधानुसार राज्यों में एनसीसी प्रमाणपत्र धारकों को रोजगार में प्राथमिकता प्रदान की जाती है। अधिकतर राज्य पुलिस, होमगार्ड एवं वन विभाग में नियुक्ति के समय एनसीसी कैडेटों एवं प्रमाणपत्र धारकों को प्राथमिकता देते हैं। इसके अलावा अधिकतर निगमित क्षेत्र एनसीसी 'सी' प्रमाणपत्र प्राप्त धारकों को निगमित क्षेत्रों में रोजगार के समय प्राथमिकता देते हैं।

एनसीसी संगठन में कैडेटों को ऐसे प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं जो जीवनभर उनके काम आते हैं। एनसीसी संगठन का केवल यह अभिप्राय नहीं है कि कैडेट सेना में जाएँ, अपितु एनसीसी संगठन अपने कैडेटों को ऐसे प्रशिक्षण प्रदान करता है जो उन्हें कदम-कदम पर मजबूत बनाते हैं। उन्हें हर बाधा का सामना सहजता से करना सिखाते हैं। उन्हें हर कार्य के प्रति दृढ़ संकल्पित बनाते हैं।

प्रशिक्षण गतिविधियों के प्रकार

एनसीसी को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया गया है—

क. संस्थागत प्रशिक्षण,

ख. सामाजिक सेवा एवं सामुदायिक विकास के कार्यक्रम,

ग. साहसिक एवं खेल प्रशिक्षण,

घ. युवा आदान-प्रदान कार्यक्रम

संस्थागत प्रशिक्षण : एनसीसी के अंतर्गत संस्थागत प्रशिक्षण प्रथम प्रशिक्षण है। प्रत्येक कैडेट को यह प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। अन्य प्रशिक्षण एवं गतिविधियाँ इस प्रशिक्षण से होकर ही गुजरती हैं। संस्थागत प्रशिक्षण में कैडेटों को प्रारंभिक सैन्य प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इस प्रशिक्षण के माध्यम से कैडेटों को सेना एवं अर्धसरकारी बल में जाने के अवसर प्राप्त होते हैं। संस्थागत प्रशिक्षण के अंतर्गत एनसीसी कैडेटों के अनेक तरह के कैंप लगते हैं। इनमें वार्षिक प्रशिक्षण कैंप, संयुक्त वार्षिक प्रशिक्षण कैंप, लीडरशिप कैंप, विशेष राष्ट्रीय एकता कैंप आदि शामिल हैं। इन सभी प्रशिक्षणों के अंतर्गत कैडेटों को ट्रैकिंग, पर्वतारोहण, शूटिंग, दौड़ आदि का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। कैंपों में जाकर कैडेट इन गतिविधियों का अभ्यास करते हैं।

सामाजिक एवं सामुदायिक विकास : सामाजिक सेवा एवं सामुदायिक विकास के अंतर्गत निम्न कार्य किए जाते हैं—

1. रक्तदान, 2. पोलियो उन्मूलन, 3. शहरों व गाँवों को स्वच्छ बनाए रखना, 4. वृद्धाश्रमों में कार्य करना, 5. प्रौढ़ शिक्षा, 6. कन्या भ्रूण

हत्या पर रोक, 7. वृक्षारोपण, 8. यमुना, गोमती सफाई अभियान, 9. 'गंगा बचाओ' अभियान, 10. कैंसर जागरूकता अभियान, 11. आपदा प्रबंधन में योगदान, 12. अनाथाश्रमों में योगदान, 13. डिजीटल जागरूकता, 14. एक भारत श्रेष्ठ भारत और 15. बीमारियों के प्रति लोगों को शिक्षा प्रदान करना और उन्हें जागरूक करना।

साहसिक एवं खेल प्रशिक्षण : साहसिक एवं खेल गतिविधियों के अंतर्गत कैडेट कैमल सफारी, रॉक क्लाइंबिंग, साइकिल-मोटर साइकिल रैली, ट्रैकिंग, पर्वतारोहण, स्कूबा डाइविंग, पैरा सेलिंग, पैरा जंपिंग आदि का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। एनसीसी में खेलों पर भी ध्यान दिया जाता है। जवाहरलाल नेहरू हॉकी चैंपियनशिप, सुब्रतो कप (फुटबॉल), घुड़सवारी चैंपियनशिप, शूटिंग चैंपियनशिप आदि में कैडेट अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

युवा आदान-प्रदान कार्यक्रम : युवा आदान-प्रदान कार्यक्रमों का उद्देश्य युवाओं में जागरूकता, उत्साह और जोश का संचार करना है। ऐसे कार्यक्रम कैडेटों को बहिर्मुखी बनाते हैं, उनके आत्मविश्वास को विकसित करते हैं। देश की सांस्कृतिक विरासत भी ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से मजबूत होती है। युवा दूसरे देशों में जाकर एक-दूसरे की सभ्यता और संस्कृति का आदान-प्रदान करते हैं। वहाँ से नई-नई बातें सीखते हैं और अपने परिवेश में आकर लोगों को दूसरे देशों की संस्कृति और ज्ञान से परिचित कराते हैं। युवा आदान-प्रदान देशों में निम्न देश शामिल हैं—रूस, वियतनाम, सिंगापुर, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, भूटान और कजाकिस्तान।

समय के अनुसार, एनसीसी संगठन के द्वारा एनसीसी को आधुनिक एवं डिजीटल बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस दिशा में एनसीसी की दो गतिविधियों को डिजीटल कर दिया गया है।

1. ऑनलाइन फॉर्म : पहले एनसीसी कैडेटों को एनसीसी में प्रवेश के समय ऑफलाइन फॉर्म भरना होता था। इससे कई बार गलतियाँ भी हो जाती थीं। इसके साथ ही समय का व्यय भी होता था। कैडेटों को फॉर्म भरने और जमा करने के लिए यूनिट आना होता था। ऑनलाइन फॉर्म होने से इसे कहीं से भी भरा जा सकता है। इससे समय एवं संसाधनों की बचत होगी।

2. 'ए', 'बी' एवं 'सी' डिजीटल प्रमाणपत्र : कैडेटों को स्कूल एवं कॉलेज में एनसीसी लेने पर 'ए', 'बी' व 'सी' प्रमाणपत्र प्रदान किए जाते हैं। अभी तक ये प्रमाणपत्र कागज के रूप में होते थे। ये प्रमाणपत्र उच्च शिक्षा एवं रोजगार के समय कैडेटों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होते हैं। 'सी' प्रमाणपत्र धारकों को कॉलेज एवं रोजगार के समय वरीयता प्रदान की जाती है। इन प्रमाणपत्रों के डिजीटल होने से कैडेटों एवं स्टॉफ को इनके रख-रखाव से मुक्ति मिलेगी। ऑफलाइन कागजों का रिकॉर्ड रखना बेहद मुश्किल होता है। इसके साथ ही ऑनलाइन प्रमाणपत्रों के फटने एवं खोने का डर भी नहीं रहेगा।

इन दोनों तरीकों के ऑनलाइन होने से कैडेट एवं स्टॉफ दोनों को ही लाभ होगा। एनसीसी को चयनित विषय बनाए जाने की चर्चा भी जोरों पर है। इस सदंर्भ में दिल्ली विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्य कॉलेजों से भी विचार-विमर्श चल रहा है। इतना ही नहीं एनसीसी संगठन एनसीसी को आधुनिक एवं नवाचारी बनाने के लिए दिन-प्रतिदिन अनेक कार्य कर रहा है। इस दिशा में भूतपूर्व कैडेटों को जोड़ा गया है। ऐसा करने से वे भूतपूर्व एनसीसी कैडेट जो आज विभिन्न क्षेत्रों में उच्च पदों पर हैं, अपने दिशा-निर्देशन से एनसीसी कैडेटों को अच्छा मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

हाल ही में एनसीसी को प्रभावी बनाने के लिए रक्षा मंत्रालय ने पूर्व सांसद विजयवंत पांडा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन भी किया है। इस समिति में पूर्व केंद्रीय मंत्री राज्यवर्धन सिंह राठौर, क्रिकेटर महेन्द्र सिंह धोनी एवं उद्योगपति आनंद महिन्द्रा जैसे विद्वजनों को शामिल किया गया है।

एनसीसी कैडेटों का आत्मविश्वास उन्हें आकाश की ऊँचाइयाँ प्रदान करता है। देश के अधिकतर स्कूलों में एनसीसी का प्रावधान है। जिन स्कूलों में एनसीसी नहीं है, वहाँ पर भी विद्यार्थी अपने स्कूल के प्रधानाचार्य से बात करके अपना नामांकन उस स्कूल से करा सकते हैं, जहाँ पर एनसीसी है। एनसीसी की सामाजिक गतिविधियाँ, प्रशिक्षण, कैंप आदि कैडेटों को आत्मनिर्भर बनाते हैं और उनके अंदर एक अच्छे नागरिक के गुणों को विभूषित करते हैं। एनसीसी में लगने वाले कैंप कैडेटों के जीवन को यादगार बनाते हैं और उनके अंदर अच्छी-अच्छी आदतों का समावेश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एनसीसी देश का एक बेहद ही महत्वपूर्ण संगठन है। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने स्कूली एवं कॉलेज जीवन में एनसीसी अवश्य लेनी चाहिए।

प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ जनरल बिपिन रावत

भारत के प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ जनरल बिपिन रावत देश का गौरव थे। उनका जन्म 16 मार्च, 1958 को उत्तराखंड के पौड़ी गढ़वाल में हुआ था। उन्होंने देहरादून के कैंबरीन हॉल स्कूल और शिमला के सेंट एडवर्ड स्कूल से स्कूली शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उनका प्रवेश राष्ट्रीय रक्षा अकादमी (एनडीए) में हुआ, जहाँ उन्होंने सैन्य प्रशिक्षण लिया। देहरादून की इंडियन मिलिट्री एकेडमी (आईएमए) से प्रशिक्षण लेने के बाद उन्हें दिसंबर 1978 में 11वीं गोरखा राइफल्स की पाँचवीं बटालियन का कमीशन सौंपा गया, जहाँ उन्हें 'सोर्ड ऑफ ऑनर' से सम्मानित किया गया। उन्होंने डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कॉलेज, वेलिंगटन से स्नातक किया। उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा रक्षा अध्ययन में एम.फिल. और चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा सैन्य मीडिया अध्ययन में पी-एच.डी. की मानद उपाधि भी दी गई।

मोहन शर्मा

जन्म : 25 अप्रैल, 1989, दिल्ली।

शिक्षा : पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातक, एम.ए. (हिंदी)।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में कार्यरत।

संपर्क : मोबाइल– 7428007292

ईमेल– mohanjournalist@gmail.com

सन् 1978 में 11वीं गोरखा राइफल्स की पाँचवीं बटालियन का कमीशन मिलने के बाद उन्होंने पूर्वी सेक्टर में वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) के साथ इन्फेंट्री बटालियन की कमान सँभाली। मेजर के पद पर रहते हुए उन्हें जम्मू-कश्मीर के उरी में इन्फेंट्री बटालियन और उत्तर-पूर्वी के सेनादल की कमान भी सौंपी गई। साथ ही, कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य में 'चेप्टर VII' मिशन में बहुराष्ट्रीय ब्रिगेड की अगुवाई भी जनरल बिपिन रावत ने ही की थी। सन् 1978 में सेकंड लेफ्टिनेंट के पद से अपने करिअर की शुरुआत करने के बाद जनरल बिपिन रावत 1980 में लेफ्टिनेंट, 1984 में कैप्टन, 1989 में मेजर, 1998 में लेफ्टिनेंट कर्नल, 2003 में कर्नल, 2007 में ब्रिगेडियर, 2011 में मेजर जनरल, 2014 में लेफ्टिनेंट जनरल बने। 31 दिसंबर, 2016 को उन्होंने 27वें थल सेनाध्यक्ष का पदभार सँभाला। 31 दिसंबर, 2019 तक सेनाध्यक्ष के पद पर रहने के दौरान उन्होंने भारतीय सेना को और अत्याधुनिक बनाने के प्रयास किए, ताकि भविष्य में सैन्यबल को युद्ध के लिए और अधिक सक्षम और उच्च स्तर का बनाया जा सके। यहाँ तक कि पूर्वोत्तर भारत में आतंकवाद को कम करने के महत्वपूर्ण कार्यों में भी जनरल रावत ने अपनी महती भूमिका निभाई। उनके कार्यकाल का मुख्य आकर्षण सन् 2015 का म्यांमार में भारतीय सैन्य अभियान भी था, जिसमें नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैंड (एनएससीएन) द्वारा भारतीय सेना की टुकड़ी पर किए आत्मघाती हमले की जवाबी कार्रवाई थी।

सरकार को प्रमुख सैन्य सलाहकार के रूप में सलाह देने के उद्देश्य से चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ (सीडीएस) के विशिष्ट पद को स्थापित करने की मंजूरी केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा दिसंबर 2019 में दी गई, जिसके बाद सेनाध्यक्ष जनरल बिपिन रावत को 01 जनवरी, 2020 को देश का प्रथम सीडीएस बनाया गया।

सीडीएस जनरल बिपिन रावत ने अपना संपूर्ण जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दिया। वे वैज्ञानिक, आधुनिक और सकारात्मक दृष्टिकोण को महत्व देते थे। चार दशकों से अधिक समय के कार्यकाल में वे भारतीय सेना को मजबूत और ताकतवर बनाने के अपने सपने को साकार करने में कामयाब रहे।

सम्मान और पुरस्कार

राष्ट्रसेवा के दौरान पूर्व सीडीएस जनरल बिपिन रावत को परम विशिष्ट सेवा पदक, उत्तम युद्ध सेवा पदक, अति विशिष्ट सेवा पदक, युद्ध सेवा पदक, सेना पदक, आहत पदक, सामान्य सेवा पदक, ऑपरेशन पराक्रम पदक, सैन्य सेवा पदक, विदेश सेवा पदक, उच्च तुंगता पदक आदि सम्मान व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

एनसीसी कैडेट को बहादुरी के लिए अशोक चक्र

राष्ट्रीय कैडेट कोर (एनसीसी) की स्थापना 15 जुलाई, 1948 को नेशनल कैडेट कोर एक्ट के तहत हुई थी। हालाँकि इस संगठन का उद्देश्य 1988 में निर्धारित किया गया। यह समय की कसौटी पर खरा उतरा है और देश के वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में भी अपेक्षित आवश्यकता को पूरा कर रहा है। राष्ट्रीय कैडेट कोर युवा भारतीयों को प्रेरित कर सशस्त्र बलों में शामिल करने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। इसके अलावा इसका प्रमुख कार्य देश के सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करने और राष्ट्र की सेवा के लिए हमेशा उपलब्ध रहने के लिए संगठित, प्रशिक्षित और प्रेरित युवाओं का मानव संसाधन तैयार करना है। ऐसा होने से देश में सुरक्षा का वातावरण बनता है और प्रत्येक नागरिक में आत्मविश्वास, धैर्य, साहस और एकता का संचार होता है।

विजय कुमार 'शाश्वत'

जन्म : 01 अक्तूबर, 1983, कानपुर देहात, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : पत्रकारिता में स्नातकोत्तर।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के रूप में कार्यरत।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कई रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8010270501

ईमेल– kvijay467@gmail.com

इसकी स्थापना के साथ ही यह देश सेवा की अग्रणी संस्था बन गई। इसने न केवल देश को कई सैन्य अधिकारी दिए, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर आम नागरिक को हर तरह से अपनी सेवाएँ दीं। आपातकाल और युद्ध के समय संगठन की जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं।

सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध में एनसीसी कैडेटों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। वे नागरिक सुरक्षा कार्यों में संलग्न थे और उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में नागरिक और सैन्य अधिकारियों की सहायता कर उन्हें आश्वस्त किया। इन कैडेटों ने सिविल डिफेंस गश्ती सहित सिविल डिफेंस पोस्ट और आउट पोस्ट की मैपिंग, अस्पताल में सेवा, नागरिक सेवा के लिए शिविर चलाए। कैडेटों द्वारा प्रदर्शित साहस और कर्तव्य के प्रति समर्पण का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण 13 सितंबर, 1965 को पंजाब के गुरदासपुर रेलवे स्टेशन पर देखा गया। रेलवे स्टेशन पर डीजल और अन्य विस्फोटक सामग्री ले जा रही रेलगाड़ी पर चार पाकिस्तानी विमानों ने बम बरसाए, जिससे वैगनों में भरे डीजल में आग लग गई। आग की लपटें इतनी भयावह थीं कि पूरा क्षेत्र काले धुएँ से ढक गया। रेलगाड़ी के पास पहुँचना आसान नहीं था। इस घटना से आस-पास के लोग दहशत में आ गए। तभी एनसीसी कैडेट सार्जेंट प्रताप सिंह (सं. 1148011) अपने 59 कैडेट साथियों के साथ वहाँ पहुँचे। सभी कैडेटों ने जान पर खेलकर आग से अप्रभावित हुए वैगनों को अलग किया और आग को फैलने से रोकने के लिए उन्हें धक्का मारते हुए जलते हुए वैगनों से दूर ले गए। इससे न केवल आस-पास के क्षेत्र को भीषण आग से बचाया गया, बल्कि वैगनों में सेना के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले गोला-बारूद को भी सुरक्षित किया गया जिससे बड़ा विस्फोट टल गया। इससे एक फायदा सेना को यह हुआ कि ईंधन के साथ-साथ गोला-बारूद की आपूर्ति के लिए लंबे समय का इंतजार नहीं करना पड़ा और समय से दोनों ही चीजें सेना को मुहैया कराई जा सकीं।

10वीं पंजाब बटालियन एनसीसी गुरदासपुर के कैडेट सार्जेंट प्रताप सिंह ने आपातकाल के समय त्वरित नेतृत्व और अतुलनीय साहस का परिचय दिया। उनके इस महती कार्य के लिए सन् 1966 में भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राधाकृष्णन ने उन्हें अशोक चक्र वर्ग III (अब इसका नाम बदलकर शौर्य चक्र कर दिया गया है) से सम्मानित किया।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
जीव-जंतु	**जंतवः**	**जीव-जंतु**	**हेवानात**	**ज़ीव ज़ॉच़**	**जीव जंतू**	**प्राणी (जीवजंतू)**	**जीव जंतू**	**प्राणी (जीवजंतु)**	**पशुपक्षी**	**जीब-जंतु**
खरगोश	शशः	सैहा (खरगोश)	ख़रगोश	खरगोश	सहो, खरगोशु	ससा	सोसो	ससलुं	खरायो	खरगोश
गिलहरी	चमरपुच्छः	गाहलड़, काटो	गिलहरी	गिलहरी	नोरीअड़ो, गिलहरी	खार	चानी	खिसकोली	लोखर्के	काठबेड़ाली
चूहा	मूषः, मूषकः	चूहा	चूहा	गगुर	कूओ	उंदीर	हूंदीर	उंदर	मुसो	इँदुर
छछूँदर	छछुन्दरी	चछूँदर	छछूँदर	अनगगर	अंधो कूओ, घुस	चिचुंदरी	चिचुंदर चिचोंदर	छछुंदर	छुचुन्द्रो	छुँचो
नेवला	नकुलः	निउला	नेवला	नूल	नोरु	मुंगुस	मुंगूस	नोळियो	न्याउरीमुसो, न्याउरी	नेउल
बिल्ली	बिडालः, मार्जारः	बिल्ली	बिल्ली	ब्रोर	ब॒िली	मांजर	माजर	बिल्ली,	बिरालो	बेड़ाल, बिड़ाल
ऊँट	उष्ट्रः	ऊठ, बोता	ऊँट	वूंठ	उठु	उंट	उंट, करें	ऊँट	ऊँट	उट
कुत्ता	कुक्कुरः	कुत्ता	कुत्ता, सग	हून	कुतो	कुत्रा	सुणो	कूतरो	कुकुर	कुकुर
खच्चर	अश्वतरः	ख़च्चर	ख़च्चर	खचुर,	ख़चरु	खेचर	खेंचर	खच्चर	खच्चड, खच्चर	खच्चर
गाय	गौः, धेनुः	गाँ, गऊ	गाय	गाव	गांइ	गाय	गाय	गाय	गाई, गौ	गाई, गामी, गोरु
चीता	चित्रकः	चीता	चीता	सह	चीतो	चित्ता	चितो	चित्तो	चितुवा, घुँगी	चीता, बाघ
बंदर	वानरः	बांदर	बंदर	वांदुर	बांदरु, भोलिड़ो	माकड	माकड	वांदरो	बाँदर	बाँदर, हनुमान

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
जीव-जंतु	**जीबा पानबा, थवाइ पानबा**	**जीव-जंतु**	**जीव जंतुवुलु**	**जीव जंतुक्कळ्**	**जीवजंतुक्कळ्**	**जीवजंतुगळु**	**जीव जैंतू**	**जियाली**	**जीव-जंतु**	**जिब-जुनार**
शहापहु	थेबा	ठेकुआ	कुंदेलु	मुयल्	मुयल्	मोल	सेहा, खड़कन्नू, खरगोश	कुलाय	खरगोश, खरहा	सेसा
केर्केटुवा	गिलहरी, खैरोइगुं, बा जीबा अमा	काकतुआ	उडुत	अणिल्	अण्णान्	अळिलु	गालढ़-चूहा	तुइ	लुक्खी	मान्दाब खेरखाथ'
एंदुर	उची	मूषा	ऐलुक	ऍलि	ऐलि	इलि	चूहा	गोडो, गुडु	मूस, मूष	एन्जर
चिका	उतिन	चुचुन्दरा	चुंचु	मूंचूरु	मूषिकम्	सुंडिलि,	घीस	चूँद	छछून्नर, छुछुन्नरि	एन्जर सिखा
नेउल	खैरोइ	नेउल	मुंगिस	कीरिप्पिळळै	कीरि	मुंगुसि	न्यौल, नौल	चेमेत्र	बिज्जी	नेउलाइ
मेकुरी	हौदोङ्.	बिलेइ, बिराड़ी	पिल्लि	पूनै	पूच्च	बेक्कु	बिल्ली	पुसि	बिलाइ	माउजि
उट	ऊट	ओट	ओटे	ओट्टगम्	ओंट्टकम्	ओण्टे	ऊट, ऊंठ शुतर	ऊँट	ऊँट	उद
कुंकुर	हुई	कुकुर, श्वान	कुक्क	नाय्	श्वानन्, नाय्, पट्टि	नायि	कुत्ता	सेता	कुकुर	सैमा/सिमा
खच्चर	शगोल थिकनेमबा	खचर	कंचर-गाडिद	कोवेरु कळुदै	कोवरकळुत	हेसरगत्ते	खच्चर	खच्चर	खच्चर	खससर, गादासा
गाइ, गाइ, गरु	शन्बी	गाई	आवु	पशु	पशु	हसु	गौ, गांई	गाई	गाए, गाइ	गाइ
चिता-बाघ	कबोकै	चिता-बाघ	चिरुतपुलि	सिरुत्तै	पुलि	चिरते	चित्तरा	चिता	चीता	सिथा मोसा
बांदर	योङ्.	मांकड़, मर्कट	कोति	कुरंगु	कुरङ्ङु	कोति, मंग	बांदर, टोह्लो	गाँड़ी	बानर	मोख्रा

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

गुमनाम शहादत का महानायक रविंद्र कौशिक

देश के लिए शहीद होने वालों की न कभी कमी रही है और न रहेगी। वीर सेनानी जनने वाली राजस्थान की धरती से देश की रक्षा के लिए अपना बलिदान देने वाले जाँबाजों की संख्या बहुत बड़ी है। सैन्य एवं अर्ध-सैन्य बलों में भर्ती होकर देश की सेवा करते हुए शहीद हुए इन बहादुरों की स्मृति में राजस्थान के विभिन्न गाँवों, कस्बों और शहरों में मूर्तियाँ नजर आ जाती हैं। स्कूलों, खेल मैदानों एवं मार्गों के नाम उन शहीदों के नाम पर रखकर उन्हें श्रद्धांजलि दी जाती है। उनके परिवारवालों को पेंशन और अन्य सुविधाएँ मिल रही हैं। परंतु कुछ शहीद ऐसे होते हैं, जिनका नाम किसी शहादत में दर्ज नहीं होता। कई बार तो सरकार को भी चुप्पी साधनी पड़ जाती है और देश के लिए जान की बाजी लगाने वाले इन बहादुरों को दुश्मन देश में यातनाएँ सहते हुए जान गँवानी पड़ती है। उनकी शहादत को भी कोई नाम नहीं मिल पाता। गुमनामी के अँधेरे में खो जाना ही उनकी नियति होती है। ये वे बहादुर होते हैं जो भारत के जासूस बनकर दुश्मन देश में जाते हैं और वहाँ की खुफिया जानकारियाँ देकर अपने देश को संकट से बचाते हैं।

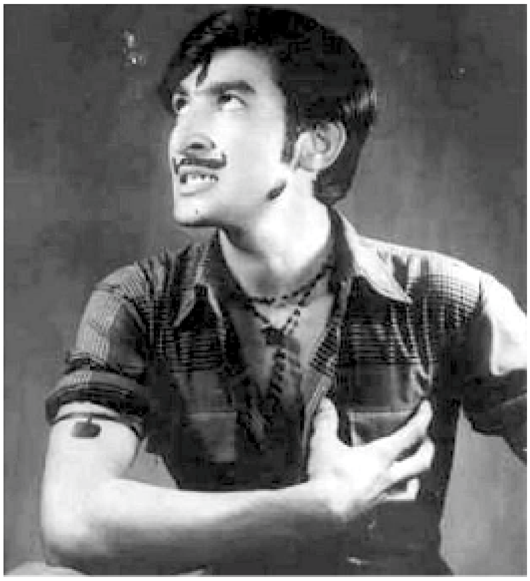

ऐसे ही एक जासूस की शहादत आज तक अपनी कुर्बानी का सम्मान पाने के लिए तड़प रही है। यह अलग बात है कि पिछले 20 वर्ष में उसकी कहानियाँ स्थानीय अखबारों से होते हुए राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों, न्यूज चैनलों और इंटरनेट की अनेकानेक साइटों पर साया होकर जन-जन तक पहुँच चुकी हैं। लोग उसकी बहादुरी, कलाकारी, जाँबाजी, बुद्धिकौशल और हिम्मत की दाद तो देते हैं, लेकिन साथ ही उसकी नियति को देखकर आँख को नम होने से भी नहीं रोक पाते।

हम बात कर रहे हैं श्रीगंगानगर (राजस्थान) में जन्मे-जाये रविंद्र कौशिक की, जो भारतीय खुफिया एजेंसी 'इंडियन रिसर्च एंड एनालिसिस विंग' अर्थात 'रॉ' का एजेंट था और जिसने पाकिस्तान में रहकर भारत के लिए जासूसी करते हुए अनेक वर्ष बिताए। उसने अपने कौशल से न सिर्फ पाकिस्तान के महाविद्यालय में कानून की पढ़ाई करके कराची विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री हासिल की, बल्कि पाकिस्तानी सेना में भर्ती होकर मेजर तक बन गया। पाकिस्तानी सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी की पुत्री से विवाह करके उसने घर बसा लिया और किसी को खबर हुए बगैर भारत को खुफिया जानकारियाँ भेजता रहा। इस बात की पुष्टि आईबी के पूर्व संयुक्त निदेशक एम.के. धर ने अपनी पुस्तक 'मिशन टू पाकिस्तान' में की है। उन्होंने पुस्तक में लिखा है—'रविंद्र कौशिक हमारे लिए धरोहर थे। कौशिक पाकिस्तान में भारतीय इंटेलीजेंस की धुरी

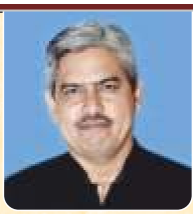

डॉ. कृष्णकुमार 'आशु'

जन्म : 12 जनवरी, 1968, श्रीगंगानगर।

संप्रति : स्वतंत्र पत्रकार एवं त्रैमासिक पत्रिका 'सृजन कुंज' के संपादक।

लेखन/कृति : पेशे से पत्रकार और प्रकृति से साहित्यकार हैं। अब तक उनकी हिंदी में दस और राजस्थानी में छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हाल ही में उनका राजस्थानी व्यंग्य उपन्यास आया है।

पुरस्कार : साहित्य अकादेमी बाल साहित्य पुरस्कार एवं राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर का कन्हैयालाल सहल पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कार एवं सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9414658290

ईमेल— dr.kkashu@gmail.com

बन गए थे। रविंद्र कौशिक की वजह से ही एक बार भारतीय सेना के बीस हजार जवानों की जान बच गई थी। कई बार ऐसे मौके आए, जब उन्होंने भारत के लिए अनेक अहम जानकारियाँ भेजीं।'

दरअसल 11 अप्रैल, 1952 को उत्तर-पश्चिम राजस्थान के सीमांत जिले, श्रीगंगानगर में जन्मे रविंद्र कौशिक को बचपन से ही अभिनय और गीत-संगीत का बहुत शौक था। उनमें देशभक्ति का जज्बा भी कूट-कूट कर भरा हुआ था। स्कूल-कॉलेज में वह कई तरह के अभिनय करते रहते और पुरस्कार भी पाते। भारत-चीन युद्ध पर बनी एक फिल्म में भारतीय सैनिक को दी जाने वाली यातनाओं को परदे पर देखकर रविंद्र ने उस पात्र का अभिनय करना आरंभ किया तो देखने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसी अभिनय के बल पर वह जिला और राज्य स्तर पर चयनित होने के बाद वर्ष 1972-73 में लखनऊ में हुए राष्ट्रीय युवा महोत्सव में शामिल हुए। उस कार्यक्रम में रॉ के कोई वरिष्ठ अधिकारी भी मौजूद थे और उन्होंने रविंद्र का अभिनय देखने के बाद उन्हें नौकरी का प्रस्ताव दिया।

देश के लिए कुछ करने की तमन्ना मन में पाले बैठे रविंद्र के लिए यह प्रस्ताव मुँहमाँगी मुराद जैसा था। उन्होंने बिना अपने परिवारोंवालों को बताए, न केवल यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, बल्कि उसके लिए विधिवत रूप से प्रशिक्षण लेना भी आरंभ कर दिया। दिल्ली, जोधपुर और कई अन्य शहरों में प्रशिक्षण के बाद वर्ष 1975 में उनका चयन हो गया। उसी वर्ष उन्होंने श्रीगंगानगर के सेठ गिरधारीलाल बिहाणी सनातन धर्म महाविद्यालय से स्नातक की परीक्षा पास की थी। चयन के बाद उन्हें पहली बार एक छोटा-सा मिशन देकर पाकिस्तान भेजा गया। कुछ समय में ही उन्होंने वह मिशन पूरा कर लिया और सकुशल वापस लौट आए। रविंद्र की इस कार्यकुशलता पर 'रॉ' की ओर से तत्कालीन गृहमंत्री वाई.बी. चह्वाण ने उन्हें 'ब्लैक टाइगर' अवार्ड भी प्रदान किया। इसी अवार्ड के कारण उनका एक नाम 'टाइगर' भी पड़ा।

पाकिस्तान में पहला मिशन पूरा करने के बाद रविंद्र कौशिक को एक बड़े मिशन की जिम्मेदारी सौंपी गई। इसके लिए उन्हें व्यापक तैयारी भी करवाई गई और बताया गया कि हो सकता है कुछ वर्ष या लंबे समय तक उन्हें पाकिस्तान में रहना पड़े। इसलिए जासूसी के गहन प्रशिक्षण के साथ उन्हें उर्दू, फारसी और अरबी भाषाओं का ज्ञान करवाया गया। इस्लाम की शिक्षा ग्रहण करवाई गई और विधिवत रूप से इस्लाम धर्म ग्रहण करवा दिया गया। तब उन्हें नया नाम दिया गया—नबी अहमद। यह सब काम उनकी 'ड्यूटी' का एक हिस्सा थे।

नई पहचान के साथ वे पाकिस्तान गए और कुछ समय वहाँ रहकर लौट आए। अधिकारियों को पूरा भरोसा था कि भारत माँ का यह लाडला अवश्य ही कोई कमाल दिखाएगा। उन्होंने रविंद्र को फिर बड़ी योजना के साथ पाकिस्तान भेजा। इस बार उनके सामने लक्ष्य बहुत बड़ा था, परंतु अपने कौशल और बुद्धि-चातुर्य के बल पर उन्होंने उसे भी हासिल कर लिया। कराची में रहकर नबी अहमद बने रविंद्र ने कानून की पढ़ाई पूरी की और कराची विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री हासिल कर ली। इस डिग्री के बल पर ही उन्होंने पाकिस्तान सर्विस कमीशन की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और रक्षा विभाग में अधिकारी बन गए।

इसी दौरान पाकिस्तानी सेना के एक अधिकारी की पुत्री अमानत से उनकी दोस्ती हो गई। यह दोस्ती बाद में प्यार में बदल गई और अमानत के परिवारवाले नबी अहमद के साथ उनके विवाह को राजी हो गए। पाकिस्तान में लंबे समय तक रहने के साथ वहाँ के लोगों में विश्वास कायम करने के लिए यह जरूरी भी था। इसके बाद उनके पाकिस्तान के प्रमुख राजनीतिज्ञों एवं उच्चाधिकारियों के संबंध बने भी और बहुत गहरे भी हुए। इसका लाभ नबी अहमद बने रविंद्र को समय-समय पर खुफिया जानकारियाँ जुटाने के लिए मिलता रहा। नबी अहमद और अमानत के घर एक पुत्र का जन्म भी हुआ। उसका नाम 'आरिब अहमद खान' रखा गया। इतना सब होने के बावजूद रविंद्र ने अमानत और अपने बेटे के समक्ष अपनी असलियत उजागर नहीं होने दी। उनके मन में अमानत के प्रति मुहब्बत भी वास्तविक थी, लेकिन उससे ज्यादा मुहब्बत उन्हें अपने देश से थी और अमानत की मुहब्बत के सामने वे भारत माता के प्रेम को कमजोर नहीं पड़ने देना चाहते थे।

पाकिस्तान में रहते हुए नबी अहमद उर्फ रविंद्र कौशिक ने भारत के खिलाफ रची जाने वाली तमाम साजिशों की पुख्ता जानकारी अपने देश को दी और अनेक संकटों से बचाया।

इधर, श्रीगंगानगर में उनके परिवारवालों में रविंद्र के विवाह की चर्चा होती, परंतु जब भी फोन इत्यादि पर बात होती तो वे विवाह की बात को टाल जाते। वर्ष 1979 में वे अपने परिवार से मिलने श्रीगंगानगर आए तो एक बार फिर उनके विवाह की बात चलाई गई। तब उन्होंने अपने जीजाजी रामलुभाया वशिष्ठ को सच बता दिया और यह भी कि उन्होंने पाकिस्तान में विवाह कर लिया है और अब वे देश की सेवा में लंबे समय तक वहीं रहेंगे। इसलिए विवाह की बात सोचना बेकार है। तब घरवालों ने उनके छोटे भाई का विवाह करवा दिया। रविंद्र फिर पाकिस्तान लौट गए और अपने मिशन में जुट गए।

पाकिस्तान में रविंद्र कौशिक उर्फ नबी अहमद का मिशन बहुत अच्छी तरह से चल रहा था। अचानक एक दिन उनकी मदद के लिए 'रॉ' की तरफ से एक और जासूस इनायत मसीह को भेजा गया, परंतु यह जासूस अपनी गलती से पाकिस्तानी सेना के हत्थे चढ़ गया और उसने रविंद्र कौशिक उर्फ नबी अहमद की सच्चाई उगल दी। इस सच्चाई को जानकर पाकिस्तानी सेना के उच्चाधिकारियों और राजनीतिज्ञों के होश फाख्ता हो गए थे। इसके बाद 06 सितंबर, 1983 को लाहौर के जिन्ना गार्डन में रविंद्र कौशिक को गिरफ्तार कर लिया गया। दो वर्ष तक उनसे पूछताछ के नाम पर घोर यातनाएँ दी गईं, परंतु भारत माँ के इस लाल ने कभी अपनी जुबान नहीं खोली। उनके खिलाफ भारत के लिए जासूसी करने का मुकदमा चलाया गया। 04 अगस्त, 1985 को लाहौर हाईकोर्ट ने रविंद्र कौशिक को भारत के लिए पाकिस्तान की जासूसी करने के जुर्म में फाँसी की सजा सुनाई। बाद में सुप्रीम कोर्ट में जाकर यह सजा आजीवन कारावास में तब्दील कर दी गई।

रविंद्र बहुत शातिर हैं, इस बात को पाकिस्तानी सेना के अधिकारी भी बखूबी जानते थे। इसलिए वे रविंद्र को कभी एक जेल में नहीं रखते थे। थोड़े समय के अंतराल से अलग-अलग जेलों में भेजा जाता था। बताते हैं कि उन जेलों में रविंद्र का कोई रिकॉर्ड भी नहीं रखा जाता था। उन्हें अनेकानेक यातनाएँ दी जाती थीं। कई-कई दिन भूखा रखा जाता था। इससे वे बीमार रहने लगे और उन्हें टीबी हो गई। उनका इलाज भी नहीं करवाया गया।

रविंद्र के परिवारवालों को उनकी गिरफ्तारी के संबंध में जानकारी नहीं थी। यह तो वर्ष 1986 में उनके परिवारवालों को रविंद्र का पत्र मिला। यह पत्र उन्होंने सियालकोट जेल से लिखा था और उसमें खुद के पकड़े जाने से लेकर सजा होने तक का पूरा विवरण दिया गया था। उनकी हिम्मत की दाद दी जाएगी कि रविंद्र ने अपने इस पत्र में भी परिवारवालों को धैर्य बनाए रखने की सलाह दी थी और विश्वास जताया था कि भारत सरकार एक-न-एक दिन उन्हें जरूर आजाद करवा लेगी, परंतु उनका यह विश्वास जीत नहीं सका।

रविंद्र की गिरफ्तारी की खबर मिलने के कुछ समय बाद उनके पिता जितेंद्रनाथ कौशिक की हृदयाघात से मृत्यु हो गई। रविंद्र की माँ अमलादेवी ने अपने पुत्र की रिहाई के लिए जो संघर्ष किया, वह भी बहुत लंबा चला। उन्होंने 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पत्र लिखा और उसके बाद हर प्रधानमंत्री को पत्र लिखती रहीं। वर्ष 2001 में रविंद्र की मृत्यु होने तक पत्रों का यह सिलसिला जारी रहा। 2001 में भी उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी को पत्र लिखा था।

रविंद्र को सियालकोट से मियाँवाली सेंट्रल जेल में भेज दिया गया। वहाँ से उन्होंने 01 नवंबर, 2001 को अपने परिवारवालों को पत्र लिखा और खुद को टीबी होने तथा पाकिस्तान में उपचार नहीं करवाने की बात लिखी। साथ ही, टीबी की दवा भिजवाने के लिए भी लिखा। परिवारवालों ने दवा का पार्सल पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग को भेजकर यह दवा मियाँवाली जेल में रविंद्र तक पहुँचाने का आग्रह किया, परंतु जब आयोग का प्रतिनिधि दवा का यह पार्सल लेकर मियाँवाली सेंट्रल जेल पहुँचा तब तक रविंद्र की मृत्यु हो चुकी थी। बताया गया कि उनकी मृत्यु 21 नवंबर, 2001 को हो चुकी थी। दवा का वह पार्सल पाकिस्तान मानवाधिकार आयोग के समन्वयक आबिद हमीद के संवेदना संदेश के साथ श्रीगंगानगर वापस आ गया। हमीद ने यह संवेदना संदेश 14 दिसंबर, 2001 को लिखा था।

देश के प्रति रविंद्र कौशिक के जज्बे को हर कोई सलाम करता है। उनके मन की भावनाएँ उनके महाविद्यालयी जीवन की एक डायरी में दर्ज इस शेर से प्रकट होती हैं। भले ही वे शायरी की तकनीक से अनजान थे, लेकिन अपने मन के भावों को प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा था—

यकीनन है मौत ज़िंदगी का अंज़ाम और मरने के कई रास्ते,
मरके भी ज़िंदा हैं वो जो मर गया वतन के वास्ते।

उत्तरी राजस्थान में सैन्य शौर्य का प्रतीक द वॉर ऑफ सैंड ड्यून, नग्गी

युद्ध मानवता का सबसे बड़ा संहारक है। इतिहास में महाभारत से बड़ा युद्ध कोई माना नहीं जाता, लेकिन प्राचीन काल को छोड़ भी दें तो आधुनिक काल में भी कतिपय देशों की विस्तारवादी सोच ने छोटे-बड़े अनेक युद्धों को जन्म दिया है। इन युद्धों का परिणाम चाहे जो निकला हो, भले ही किसी देश की जीत हुई हो या हार, लेकिन यह तय है कि मानवता सदैव युद्ध में हारती है। भारत-पाकिस्तान का वर्ष 1971 का युद्ध भारत ही नहीं, इस उपमहाद्वीप में सर्वाधिक चर्चित युद्धों में से एक रहा है। इसी युद्ध के परिणामस्वरूप पाकिस्तान से अलग एक और देश बांग्लादेश अस्तिव में आया था। वर्ष 1971 का युद्ध अपनी जगह है और इसकी समाप्ति के तुरंत बाद पाकिस्तान की कुत्सित नीतियों के कारण लड़ा गया एक छोटा-सा युद्ध इतिहास के पन्नों पर दर्ज है। भले ही इसके बारे में बहुत ज्यादा लोग न जानते हों, लेकिन इस युद्ध में जिस तरह भारतीय सैनिकों ने अपनी जान की बाजी लगाकर धोखे से किए गए पाकिस्तान के अतिक्रमण को मात्र दो घंटे में खत्म किया था, सेना का वह साहस, वह शौर्य और वह कुर्बानी आज भी उत्तरी राजस्थान में बड़े गर्व और सम्मान के साथ याद की जाती है।

दरअसल, पाक ने अपने नापाक इरादों का परिचय देते हुए 1971 में युद्ध विराम लागू होने के बाद चुपके से हमारे क्षेत्र पर हमला कर हमारा क्षेत्र हथिया कर, अपनी सामरिक स्थिति को मजबूत करना चाहा था। पड़ोसी देश अपनी इस नापाक साजिश में कुछ हद तक कामयाब भी हो गया था। लेकिन हमारी बहादुर सेना ने जवाबी हमला बोल, भीषण झड़प के बाद यह क्षेत्र वापस प्राप्त कर लिया गया। भारतीय सैन्य इतिहास में यह युद्ध 'रेत के धोरों का युद्ध' या 'बैटल ऑफ सैंड ड्यून्स' के नाम से दर्ज है। जिस स्थान पर यह युद्ध लड़ा गया, वह स्थान 'नग्गी' के नाम से जाना जाता है।

नग्गी, भारत-पाक सीमा पर स्थित श्रीगंगानगर जिले की श्रीकरणपुर तहसील में स्थित है। इस भीषण युद्ध में भारतीय सेना के 25 जवान एवं अधिकारियों ने शहादत का जाम पिया था। इसमें तोपों, टैंकों सहित भारी मात्रा में बड़े हथियारों का प्रयोग किया गया। यहाँ की भौगोलिक विशेषताओं के कारण यह युद्ध और अधिक भयावह रूप में परिवर्तित हो गया था।

कैप्टन (डॉ.) अरुण कुमार शहेरिया

जन्म : 19 दिसंबर, 1969

संप्रति : श्रीगंगानगर में डॉ. भीमराव आंबेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में भूगोल के सह-आचार्य एवं एनसीसी के प्रभारी भी हैं।

लेखन : शायरी की दुनिया में 'ताइर गुरदासपुरी' के नाम से जाने जाते हैं। वे राष्ट्रीय स्तर के अनेक मुशायरों में वाहवाही लूट चुके हैं। देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में उनकी गजलें प्रकाशित होती रहती हैं। गजल की पहली किताब शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

संपर्क : मोबाइल– 9414381327

नग्गी गाँव, राजस्थान के उत्तरी जिले श्रीगंगानगर की नौ तहसीलों में से एक श्रीकरणपुर में स्थित है। भारत-पाक सीमा पर स्थित यह गाँव सामरिक लिहाज से काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह 29.9290 डिग्री उत्तर तथा 73.4051 डिग्री पूर्व, डेसीमल डिग्री पर स्थित है। रेत के विशाल धोरों के बीच स्थित इस क्षेत्र की औसत ऊँचाई 185 मीटर है। श्रीकरणपुर कस्बे को 'करणपुर मंडी' के नाम से भी जाना जाता है। नहरों के आने के बाद यह क्षेत्र कपास, गेहूँ तथा गन्ने के उत्पादन के लिए भी काफी प्रसिद्ध है।

पड़ोसी मुल्क को जब 1971 के युद्ध में मुँह की खानी पड़ी तो वह बौखलाहट के चलते इधर-उधर हाथ-पैर मारने लगा था। यह 16 दिसंबर, 1971 की बात है, जब पाकिस्तानी सेना के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल ए.के. नियाजी ने अपने 93 हजार हथियारबंद फौजियों के साथ भारतीय कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के समक्ष आत्मसमर्पण कर अपनी हार स्वीकार की थी और सीमाओं पर युद्धविराम घोषित हो गया था। तब दोनों देशों की सेनाएँ प्रोटोकाल का पालन करते हुए, पाँच-पाँच किलोमीटर अंदर की ओर आकर अपने-अपने शिविर लगाने लगी थीं।

बदले की आग में जलते दुश्मन देश की सेना ने कोई दस-ग्यारह दिन बाद ही गुपचुप तरीके से नग्गी के आस-पास के रेतीले धोरों पर लगभग एक से दो किलोमीटर तक भारत की जमीन पर कब्जा कर लिया। भारतीय सेना को इसकी सूचना भेड़-बकरियाँ चराने वालों से मिली। इसके तुरंत बाद भारतीय सेना ने जवाबी कार्यवाही की तैयारी कर ली। इसके लिए 50 पैरा, 4 पैरा बटालियन, 9 पैरा रेजीमेंट तथा 24 पैरा को जिम्मेदारी दी गई। यह 27-28 दिसंबर, 1971 की मध्यरात्रि थी, जब उच्चाधिकारियों के आदेश जारी हुए और तड़के चार बजे भारतीय सेना ने जोरदार हमला बोला।

दुश्मन ने जहाँ-जहाँ भारतीय जमीन पर कब्जा कर लिया था, उस इलाके में माइन्स बिछा रखे थे। इसके कारण भारतीय सेना के कुछ जवान शहीद हो गए थे। पाक सेना की ओर से भारी तोपखाने का भी प्रयोग किया जा रहा था। यह पूरा इलाका रेतीले धोरों (टीलों) से भरा हुआ है। भारतीय सेना एक धोरे को फतह करती तो सामने दूसरा धोरा आ जाता था। लगता था कि जैसे धोरों की लाइन-सी लगी हुई थी। भारतीय सेना एक के बाद एक धोरे पर कब्जा जमाती हुई आगे बढ़ रही थी। अंततः दो घंटे के भीषण युद्ध के बाद भारतीय सेना ने पुनः नग्गी के धोरों पर अपना कब्जा जमा लिया तथा पाक सेना को वहाँ से खदेड़ने में कामयाब रही। 28 दिसंबर, 1971 का सूरज अपनी किरणों के माध्यम से भारत की विजय पताका लहराने के साथ उदय हुआ था। इस विजय पताका के रंग में हमारे 21 जवानों तथा चार अधिकारियों की शहादत का रंग भी शामिल हो चुका था।

इन सूरमाओं की याद में आज भी नग्गी में प्रत्येक वर्ष 28 दिसंबर को मेला लगता है। इस युद्ध में स्थानीय निवासियों ने सेना का भरपूर साथ दिया। बुर्जवाला तथा नग्गी गाँव के निवासियों ने

न सिर्फ चाय, दूध तथा अन्य खाद्य सामग्री से सेना की हौसला अफजाई की, बल्कि इससे भी बढ़कर उन्होंने अपने ट्रैक्टरों के साइलेंसर उतारकर युद्ध की उस रात खेतों में इधर-उधर दौड़ा कर शोर करते रहे। इससे पाक सेना को लगा कि भारत ने टैंकों से हमला कर दिया है।

इस भीषण युद्ध में हमारे 25 जवान एवं अधिकारी शहीद हो गए थे। इनमें से कुछ पाक की बिछाई गई माइन्स की जद में आ गए, कुछ एम.एम.जी. ब्रस्ट से हताहत हुए तथा कुछ को तोपों के गोलों ने हानि पहुँचाई। इन महान सपूतों की शहादत की वजह से ही हम इस क्षेत्र के भूगोल को बदलने से बचा पाए। इनमें मेजर ए.के. कनाल, मेजर के.जे. सिंह, सेकंड लेफ्टिनेंट वी.आर. दुग्गल, हवलदार टेक बहादुर, बलराम गुरूंग, प्रतापसिंह, नायक गंगादत्त, एस. चौल्लैह, तेज सिंह, गजेन्द्र सिंह, आनन्द सिंह, गौर सिंह, कमलेश कुमार, प्रीतम राम, बाबू राम, आनन्द सिंह बिष्ट, वी.डी. विर्के, के.पी. उदयन, भीम बहादुर थापा, जोसेफ वीटी तथा वी.पी. मारां आदि शामिल थे। इन बहादुर योद्धाओं के सर्वोच्च बलिदान के सम्मान में नग्गी में वॉर मेमोरियल भी बनवाया गया है।

आज के इस वैज्ञानिक युग में भले ही इस बात पर कोई विश्वास नहीं करे, लेकिन आम नागरिकों के साथ सेना के जवानों और अधिकारियों तक का मानना है कि उस युद्ध में किसी अदृश्य शक्ति ने भारतीय सेना की मदद की थी। स्थानीय नागरिकों का कहना है कि जब इस युद्ध में भारतीय सेना को नुकसान पहुँच रहा था, तब अचानक एक अदृश्य आवाज ने सैनिकों को एक दिशा की ओर जाने से सावधान किया था। बाद में पता चला कि उस दिशा में पाक ने माइन्स बिछाए हुए थे। इस घटना से कई भारतीय सैनिकों की रक्षा हो सकी। जब सैनिकों ने इस जगह पूजा-पाठ किया तो जगह-जगह से भारतीय सेना को विजय प्राप्त होने की खबरें आनी शुरू हो गईं। बाद में इसी जगह शहीद स्मारक तथा दुर्गा माता के मंदिर का निर्माण करवाया गया। युद्ध में शामिल सैनिकों का भी मानना था कि इस युद्ध में किसी अदृश्य शक्ति ने उनकी सहायता जरूर की थी।

दरअसल, दुश्मन देश इस युद्ध का सहारा लेकर अपनी व भारत की भौगोलिक सीमा को परिवर्तित करना चाहता था। पूर्वी सीमा पर (पूर्वी पाकिस्तान, वर्तमान बांग्लादेश) में करारी हार झेलने के बाद पाकिस्तान उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अपना बदला लेना चाहता था। इस हमले का एक मुख्य कारण यह भी माना गया कि नग्गी के नजदीक पाकिस्तान में 'सादकी' नाम की एक नहर बनी हुई है। इस नहर का नाम बहावलपुर के नवाब अमीर सद्दीक मुहम्मद खान के नाम पर रखा गया है और सुलेमान की हैड से निकल कर नग्गी के पास से मोड़ काटती हुई हकरा शाखा के नाम से मुड़ती हुई दक्षिण की ओर जाती है। यह नहर पाकिस्तान में सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण के साथ-साथ उसकी सुरक्षा रेखा के रूप में भी कार्य करती है। यदि पाकिस्तान नग्गी युद्ध में कामयाब हो जाता और यह क्षेत्र उसके कब्जे में आ जाता तो वह इस नहर को सीधा कर अपने बड़े भू-भाग को लाभान्वित कर सकता था, परंतु भारतीय योद्धाओं ने पाक के सभी मंसूबों पर पानी फेर दिया।

यहाँ सैन्य विषयों के प्रसिद्ध लेखक सान ज्यू का यह कथन सही प्रतीत होता नजर आता है, "जो युद्ध करना चाहता है, उसे इसका आकलन पहले ही कर लेना चाहिए कि उसे इस युद्ध की क्या कीमत अदा करनी पड़ेगी।"

तीनों सेनाओं में शौर्य दिखाने वाले योद्धा कर्नल पृथीपाल सिंह गिल

भारतीय सेना में यह कथन मशहूर है, "एक सैनिक हमेशा सैनिक ही रहता है।" इस कथन को अपने जीवन में पूर्णतः चरितार्थ करने वाले कर्नल पृथीपाल सिंह गिल पूरे भारत में एकमात्र ऐसे सैन्य अधिकारी रहे हैं जिन्होंने तीनों सेनाओं सहित पैरामिलिट्री फोर्स में भी अपना शौर्य दिखाया है। कर्नल पृथीपाल सिंह का जन्म 11 दिसंबर, 1920 को पटियाला में हुआ था। उनका विवाह 1950 में प्रेमिंदर कौर से हुआ। उन्होंने लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज से स्नातक किया, फिर लाहौर के ही वाल्टन एयरोड्रम से पायलट का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके पश्चात उन्होंने अपने परिवार की सहमति के बिना वायु सेना में अपने करिअर की शुरुआत की। अंग्रेजों के राज में वर्ष 1942 में सर्वप्रथम उन्होंने रॉयल इंडियन एयरफोर्स में कराची में पायलट अफसर के तौर पर सेना में कार्य प्रारंभ किया। उनके पिता हरपाल सिंह गिल को डर लगा कि कहीं पृथीपाल एयरक्रैश का शिकार न हो जाएँ। अतः उनके परिवार के लोगों के भारी दबाव के चलते पृथीपाल को नौसेना में जाना पड़ गया। यहाँ भी उनका करिअर शानदार रहा।

पृथीपाल सिंह ने माइन स्वीपिंग शिप व आईएनएस में अपनी सेवाएँ दीं। इसके साथ ही वे नेवल गन के एक्सपर्ट बन गए। इसी दौरान उनका चयन महाराष्ट्र के देवलाली स्थित लॉग गनरेरी स्टाफ कोर्स में हो गया। यह बहुत ही मुश्किल कोर्स होता है, लेकिन इस कोर्स में भी वे अव्वल रहे। यहीं से उनके लिए भारतीय थल सेना के दरवाजे खुल गए और उन्होंने भारतीय सेना की आर्टिलरी रेजिमेंट में नियुक्ति पा ली। वे अपने सैन्य जीवन के दौरान बहुत ही बहादुर अफसर रहे हैं।

वर्ष 1965 में भारत-पाकिस्तान के बीच हुई जंग के दौरान वे 71 मीडियम रेजिमेंट का नेतृत्व कर रहे थे। जंग के दौरान पाकिस्तानी सेना ने उनके गन की बैटरी चुरा ली। जब उन्हें पता चला तो वे अपने साथियों के साथ पाकिस्तानी इलाके में गए और वहाँ से गन की बैटरी छुड़ा लाए थे। उनके कदम यहीं नहीं रुके। 100 साल तक के अपने जीवनकाल में वे सेना के तीनों अंगों में काम करने के बाद उखरुल सेक्टर में पैरामिलिट्री फोर्स असम राइफल्स के कमांडर के तौर पर नियुक्त हुए। उनकी आँखों के सामने से दूसरे विश्वयुद्ध से लेकर 1965 की भारत-पाकिस्तान की लड़ाई तक कई जंग के दौर गुजरे हैं। दूसरे विश्व युद्ध में कर्नल गिल को मालवाहक पोतों की निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

प्रायः ऐसा बहुत कम होता है कि एक अफसर एक से अधिक सेनाओं में सेवा कर पाता हो। कानून में प्रावधान है कि एक अफसर को आर्म्ड फोर्सेस के एक अंग से दूसरे अंग में ट्रांसफर किया जा सकता है। फेफड़ों में पानी की उपस्थिति के कारण कर्नल गिल ने नौसेना से थल सेना में स्थानांतरण की माँग की थी, जिसे उनकी योग्यता को देखते हुए मंजूरी दे दी गई। थल सेना में उन्हें कर्नल के पद पर पदोन्नत किया गया और मणिपुर के उखरुल में असम राइफल्स सेक्टर में कमान सौंपी गई।

अपने परिवार से सेना में शामिल होने वाले पृथीपाल सिंह पहले व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि इनके पिता हरपाल सिंह, दादा बीर सिंह और पड़दादा नेहान सिंह भी सेना में सेवाएँ दे चुके हैं। कर्नल गिल को खेलों में भी गहरी रुचि थी और उन्हें टेनिस, स्क्वैश और बैडमिंटन खेलना पसंद था। अपने 101वें जन्मदिन से ठीक एक सप्ताह पहले 05 दिसंबर, 2021 को उन्होंने इस लोक से विदा ली। गिल के परिवार में उनकी पत्नी, एक बेटा, तीन पोते और तीन पड़पोते हैं। कर्नल पृथीपाल सिंह हमेशा खुश रहते थे, उन्हें कभी उदास नहीं देखा गया। वह एक जिंदादिल इनसान थे जो लोगों के लिए प्रेरणास्रोत थे।

कमलेश पाण्डेय

जन्म : 16 अप्रैल, 1965, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : स्नातकोत्तर (हिंदी)।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के पद पर कार्यरत।

प्रकाशन : बाल कहानी संग्रह 'असली गुल्लक', कहानी संग्रह 'अनुराधा लौट आओ' प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9873575920

ईमेल–kamleshpandey.65@gmail.com

देश-सेवा में लगी पाँचवीं पीढ़ी

–मोहन शर्मा

नुआँ, झुंझुनू की स्वर्गीय बिस्मिल्लाह बानो खुशनसीब माँ थीं, जिनके चार पुत्र 1965 और पाँच पुत्र 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में अलग-अलग मोर्चों पर तैनात थे। भारतीय सेना से सेवानिवृत्त उनके पति नजर मोहम्मद खाँ का सपना था कि उनके पुत्र भी भारतीय सेना में भरती होकर देश की सेवा करें। उनका यह सपना सच हुआ। उनके आठ में से सात पुत्र–गौस मोहम्मद खाँ, मकसूद खाँ, लियाकत खाँ, शौकत खाँ, सद्‌दीक खाँ, फारूख खाँ और इंतजार खाँ भारतीय सेना में भरती हुए। इनमें से पाँच पुत्रों ने अपने सेवा-काल में पाकिस्तान से हुए दो युद्धों में भी अपने कर्तव्य का निर्वहन किया। उनके सबसे बड़े पुत्र इलियास अली भी सेना में भरती होना चाहते थे, लेकिन दिव्यांगता के चलते यह संभव नहीं हो सका। उन्होंने अपने बेटे अली हसन को फौजी बनाकर इस इच्छा को पूरा किया।

वर्ष 2014 में इन आठ भाइयों की माँ, 110 वर्षीया बिस्मिल्लाह बानो का निधन हुआ। अपने जीवन में उन्होंने परिवार के सभी सदस्यों को भारतीय सेना में भरती होकर देश की सेवा करने के लिए प्रेरित किया। पौत्र रियाजत अली के अनुसार, दादा-दादी के अनुशासित जीवन और देश-प्रेम ने उन्हें इस काबिल बनाया है। वे बताते हैं कि उनकी स्वर्गीय दादी के नाम पर बिस्मिल्लाह कॉलोनी है, जिसमें वे लोग एक साथ रहते हैं। दादी माँ की इच्छा थी कि उनके बेटे अपने दादा और पिता की तरह भारतीय सेना में भरती हों। उन्होंने अपने बेटों को तो इस काबिल बनाया ही, साथ में अपने पौत्र-प्रपौत्रों के मन में भी देश-सेवा का भाव जगाया। स्व. नजर मोहम्मद खाँ और बिस्मिल्लाह बानो के परिवार की पाँचवीं पीढ़ी भी देश-सेवा में संलग्न है। बतौर रियाजत अली, "1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में मेरे पिताजी लियाकत खाँ की अंबाला एयरपोर्ट, मेरे दो ताऊजी–गौस मोहम्मद खाँ की सिंजोरिया

चौकी, मकसूद खाँ की चीन सीमा और दो चाचाजी– शौकत खाँ की चीन सीमा, सद्‌दीक खाँ की बाड़मेर में कनॉट पाइंट पर तैनाती थी। उनमें से चार लोगों ने 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भी देश की सेवा की थी। दादा-दादी दुआ करते थे कि दुश्मन अपने नापाक इरादों में कामयाब न हों। अब तक हमारे परिवार के 19 सदस्यों ने भारतीय सेना में शामिल होकर देश-सेवा की है, जिनमें से 15 सदस्य सेवानिवृत्त हैं, उनमें से भी मेरे दो चचेरे भाई–इफ्तेकार अली और जुल्फिकार अली डिफेंस सिक्योरिटी कॉर्प्स (डी.एस.सी.) में सेवा दे रहे हैं। रियाजत आगे बताते हैं कि उनके चाचा सद्‌दीक खाँ के पौत्र इमदाद अली कुछ वर्ष पहले भारतीय सेना में भरती हुए हैं। यह उनके परिवार की पाँचवीं पीढ़ी के सदस्य हैं, जिन्होंने फौज में जाने की पारिवारिक परंपरा जारी रखी है। रियाजत अली के पुत्र 19 वर्षीय इस्माइल अली भी भारतीय सेना में जाने के लिए प्रशिक्षण ले रहे हैं। वर्तमान में बिस्मिल्लाह बानो के परिवार के चार सदस्य भारतीय सेना और दो डी.एस.सी. में शामिल होकर देश की सेवा में लगे हैं। इस दौरान राँची में तैनात अकरम खाँ 2016 में संयुक्त राष्ट्र के शांति मिशन में लेबनान की राजधानी बेरूत में भी अपनी सेवाएँ दे चुके हैं।

झुंझुनू वीरों की धरती है और उसमें नुआँ गाँव की बात ही निराली है। इस गाँव के हर परिवार में भारतीय सेना से पेंशन आती है। इस गाँव का हर व्यक्ति अपने पारिवारिक पराक्रम को बताते हुए गौरवान्वित महसूस करता है कि उनके घर से अमुक व्यक्ति ने सेना में शामिल होकर देश-सेवा की है। यही नहीं, यहाँ के लोग देश के युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत हैं। गाँव के ही कैप्टन अयूब खाँ ने 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में अपना शौर्य दिखाया और वीर चक्र से सम्मानित हुए। सेवानिवृत्त होने के बाद वर्ष 1984 में झुंझुनू लोकसभा सीट से चुनकर सांसद भी बने। गाँव में भारतीय सेना में जाने की परंपरा दशकों से चली आ रही है और युवा भी इस परंपरा को जारी रखे हुए हैं।

बेजोड़ लता मंगेशकर

बरसों पहले की बात है। मैं बीमार था। उस बीमारी में एक दिन मैंने सहज ही रेडियो लगाया और अचानक एक अद्वितीय स्वर मेरे कानों में पड़ा। स्वर सुनते ही मैंने अनुभव किया कि यह स्वर कुछ विशेष है, रोज का नहीं। यह स्वर सीधे मेरे कलेजे से जा भिड़ा। मैं तो हैरान हो गया। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि यह स्वर किसका है। मैं तन्मयता से सुनता ही रहा। गाना समाप्त होते ही गायिका का नाम घोषित किया गया—लता मंगेशकर। नाम सुनते ही मैं चकित हो गया। मन-ही-मन एक संगति पाने का अनुभव भी हुआ। सुप्रसिद्ध गायक दीनानाथ मंगेशकर की अजब गायकी एक दूसरा स्वरूप लिए उन्हीं की बेटी की कोमल आवाज में सुनने का अनुभव हुआ। मुझे लगता है 'बरसात' के भी पहले के किसी चित्रपट का कोई गाना था। तब से लता निरंतर गाती चली आ रही है और मैं भी उसका गाना सुनता आ रहा हूँ।

पंडित कुमार गंधर्व

(8 अप्रैल, 1924-12 जनवरी, 1992)

कुमार गंधर्व भारत के सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक थे, जिनका वास्तविक नाम 'शिवपुत्र सिद्धरामैया कोमकाली' है। उनका हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत दोनों में महत्वपूर्ण नाम है। कुमार गंधर्व के गाए हुए राग 'मालकोश' और 'भीमपलासी' हैं।

रचनाएँ : उड़ जाएगा हंस अकेला, बोर चौता, झीनी झीनी चदरिया, सुनता है गुरु ज्ञानी।

पुरस्कार : पद्म विभूषण

लता के पहले प्रसिद्ध नूरजहाँ का चित्रपट संगीत में अपना जमाना था। परंतु उसी क्षेत्र में बाद में आई हुई लता उससे कहीं आगे निकल गई। कला के क्षेत्र में ऐसे चमत्कार कभी-कभी दीख पड़ते हैं, जैसे—प्रसिद्ध सितारिए विलायत खाँ अपने सितार वादक पिता की तुलना में बहुत ही आगे चले गए। मेरा स्पष्ट मत है कि भारतीय गायिकाओं में लता के जोड़ की गायिका हुई ही नहीं। लता के कारण चित्रपट संगीत को विलक्षण लोकप्रियता प्राप्त हुई है। यही नहीं, लोगों का शास्त्रीय संगीत की ओर देखने का दृष्टिकोण भी एकदम बदला है। छोटी बात कहूँगा। पहले भी घर-घर में छोटे-छोटे बच्चे गाया करते थे। पर उस गाने में, और आजकल घरों में सुनाई देने वाले बच्चों के गाने में बहुत अंतर हो गया है। आजकल के बच्चे भी स्वर में गुनगुनाते हैं। क्या लता इस जादू का कारण नहीं है?

कोकिला का निरंतर स्वर कानों में पड़ने लगे तो कोई भी सुनने वाला उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करेगा। यह स्वाभाविक ही है। चित्रपट संगीत के कारण सुंदर स्वर-मालिकाएँ लोगों के कानों में पड़ रही हैं। संगीत के विविध प्रकारों से उनका परिचय हो रहा है। उनका स्वर ज्ञान बढ़ रहा है। सुरीलापन क्या है, इसकी समझ भी उन्हें होती जा रही है। तरह-तरह की लय के भी प्रकार उन्हें सुनाई पढ़ रहे हैं और आकारयुक्त लय के साथ उनकी जान-पहचान होती जा रही है। साधारण प्रकार के लोगों को भी उसकी सूक्ष्मता समझ में आने लगी है।

इन सबका श्रेय लता को ही है। इस प्रकार उसने नई पीढ़ी के संगीत को संस्कारित किया है और सामान्य मनुष्य में संगीत विषयक अभिरुचि पैदा करने में बड़ा हाथ बँटाया है। संगीत की लोकप्रियता, उसका प्रसार और अभिरुचि के विकास का श्रेय लता को ही देना पड़ेगा। सामान्य श्रोता को अगर आज लता की ध्वनि-मुद्रिका और शास्त्रीय गायकी की ध्वनि-मुद्रिका सुनाई जाए तो वह लता की ध्वनि-मुद्रिका ही पसंद करेगा। गान कौन-से राग में गाया गया और ताल कौन-सा था, यह शास्त्रीय ब्योरा उस आदमी को सहसा मालूम नहीं रहता। उसे इससे कोई मतलब नहीं कि राग मालकौंस था और ताल त्रिताल। उसे तो चाहिए वह मिठास, जो उसे मस्त कर दे, जिसका वह अनुभव कर सके। और यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्यता हो, तो वह मनुष्य है, वैसे ही 'गान-पन' हो तो वह संगीत है। और लता का कोई भी गाना लीजिए, तो उसमें शत-प्रतिशत यह 'गान-पन' मिलेगा।

लता की लोकप्रियता का मुख्य मर्म यह 'गान-पन' ही है। लता के गाने की एक और विशेषता है, उसके स्वरों की निर्मलता। उसके पहले की पार्श्व-गायिका नूरजहाँ भी एक अच्छी गायिका थी, इसमें संदेह नहीं, तथापि उसके गाने में एक मादक उत्तान दिखता था। लता के स्वरों में कोमलता और मुग्धता है। ऐसा दिखता है कि लता का जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण है, वही उसके गायन की निर्मलता में झलक रहा है। हाँ, संगीत दिग्दर्शकों ने उसके स्वर की इस निर्मलता का जितना उपयोग कर लेना चाहिए था, उतना नहीं किया। मैं स्वयं यदि संगीत दिग्दर्शक होता तो लता को बहुत जटिल काम देता, ऐसा कहे बिना नहीं रहा जाता। लता के गाने की एक और विशेषता है, उसका नादमय उच्चार। उसके गीत के किन्हीं दो शब्दों का अंतर, स्वरों की आस द्वारा बड़ी सुंदर रीति से भरा रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे दोनों शब्द विलीन होते-होते एक-दूसरे में मिल जाते हैं। यह बात पैदा करना बड़ा कठिन है, परंतु लता के साथ यह बात अत्यंत सहज और स्वाभाविक हो बैठी है।

ऐसा माना जाता है कि लता के गाने में करुण रस विशेष प्रभावशाली रीति से व्यक्त होता है, पर मुझे खुद ये बात नहीं पटती। मेरा अपना मानना है कि लता ने करुण रस के साथ उतना न्याय नहीं किया है। बजाय इसके मुग्ध शृंगार की अभिव्यक्ति करने वाले मध्य या द्रुतलय के गाने लता ने बड़ी उत्कृष्टता से गाए हैं। मेरी दृष्टि से उसके गायन में एक और कमी है, तथापि ये कहना कठिन होगा कि इसमें लता का दोष कितना है और संगीत दिग्दर्शकों का दोष कितना। लता का गाना सामान्यतया ऊँची पट्टी में रहता है। गाने में संगीत दिग्दर्शक उसे अधिकाधिक ऊँची पट्टी में गवाते हैं और उसे अकारण ही चिलवाते हैं। एक प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि शास्त्रीय संगीत में लता का स्थान कौन-सा है? मेरे मत से यह प्रश्न खुद ही प्रयोजनहीन हो जाता है और उसका कारण है कि शास्त्रीय संगीत और चित्रपट संगीत में तुलना हो ही नहीं सकती। जहाँ गंभीरता शास्त्रीय संगीत का स्थायी भाव है, जलद लय, चपलता चित्रपट संगीत का मुख्य गुणधर्म है।

चित्रपट संगीत का ताल प्राथमिक अवस्था का ताल होता है, जबकि शास्त्रीय संगीत में ताल अपने परिष्कृत रूप में पाया जाता है। चित्रपट संगीत में आधे तालों का उपयोग किया जाता है। उसकी लयकारी बिलकुल अलग होती है, आसान होती है। यहाँ गीत और आघात को ज्यादा महत्व दिया जाता है, सुलभता और लोच को अग्रस्थान दिया जाता है, तथापि चित्रपट संगीत गाने वाले को शास्त्रीय संगीत की उत्तम जानकारी होना आवश्यक है और वह लता के पास निःसंशय है। तीन-साढ़े तीन मिनट के गाए हुए चित्रपट के किसी गाने का और एकाध खानदानी शास्त्रीय गायक की तीन-साढ़े तीन घंटे की महफिल, इन दोनों का कलात्मक और आनंदात्मक मूल्य एक ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। किसी उत्तम लेखक का कोई विस्तृत लेख जीवन के रहस्य का विशद रूप में वर्णन करता है तो वही रहस्य छोटे से सुभाषित का या नन्हीं-सी कहावत में सुंदरता और परिपूर्णता से प्रकट हुआ प्रतीत होता है। उसी प्रकार तीन घंटों की रंगदार महफिल का सारा रस, लता की तीन मिनट की ध्वनि-मुद्रिका में आस्वादित किया जा सकता है। उसका एक-एक गीत, एक संपूर्ण कलाकृति होती है। स्वर, लय, शब्दार्थ का वहाँ त्रिवेणी संगम होता है और महफिल की बेहोशी उसमें समाई रहती है।

वैसे देखा जाए तो शास्त्रीय संगीत क्या, और चित्रपट संगीत क्या, अंत में रसिक को आनंद देने का सामर्थ्य किस गाने में कितना है, इस पर उसका महत्व ठहराना उचित है। मैं तो कहूँगा कि शास्त्रीय संगीत भी रंजक न हो, तो वो बिलकुल नीरस ठहरेगा, अनाकर्षक प्रतीत होगा और उसमें कुछ कमी-सी प्रतीत होगी। गाने में जो गाना-पन प्राप्त होता है, वह केवल शास्त्रीय बैठक्के पक्केपन की वजह से ताल-सुर के निर्दोष ज्ञान के कारण नहीं। गाने की सारी मिठास, सारी ताकत उसकी रंजकता पर मुख्यतः अवलंबित रहती है और रंजकता का मर्म रसिक वर्ग के समक्ष कैसे प्रस्तुत किया जाए, किस रीति से उसकी बैठक बैठाई जाए और श्रोताओं से कैसे सुसंवाद साधा जाए, इसमें समाविष्ट है। किसी मनुष्य का अस्थिपंजर और एक प्रतिभाशाली कलाकार द्वारा उसी मनुष्य का तैलचित्र, इन दोनों में जो अंतर होगा, वही गायन के शास्त्रीय ज्ञान और उसकी स्वरों द्वारा की गई सुसंगत अभिव्यक्ति में होगा।

(स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर जी के फिल्म में गाने के स्वर्ण जयंती के अवसर पर कुमार गंधर्व जी ने 'अभिजात कलावती' नाम से मराठी में यह लेख लिखा, जिसे हिंदी में 'धर्मयुग' पत्रिका ने छापा।)

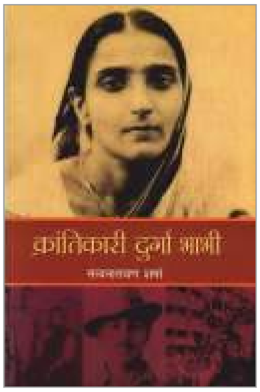

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **सत्यनारायण शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 150

मूल्य : रु. 200/-

क्रांतिकारी दुर्गा भाभी

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी हुकूमत जिन वीरांगनाओं से थर्राती थी, उनमें से एक थीं—दुर्गा भाभी। क्रांतिकारी भगवती चरण बोहरा की पत्नी दुर्गा देवी बोहरा, जिन्हें भगवती चरण के साथी आदर से दुर्गा भाभी कहते थे। बाद में वह इसी नाम से प्रसिद्ध हो गईं। यह पुस्तक इस अनुपम क्रांतिकारी दंपती की जीवनी है। साथ ही, इसमें स्वतंत्रता संग्राम में अन्य क्रांतिकारियों के योगदान की एक झलक भी है।

पुस्तक की शुरुआत भारत में यूरोपीय देशों की घुसपैठ, ब्रिटिश राज की स्थापना और उसके प्रतिरोध की कहानी से हुई है। लेखक ने यहाँ भारतीय इतिहास में क्रांतिकारी आंदोलन तथा इस विचारधारा की उपेक्षा के कारणों की पड़ताल की है। लेखक का मानना है कि आजादी सिर्फ सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने से ही नहीं मिली, बल्कि अपने प्राणों पर खेलने वाले युवकों के साहसपूर्ण कार्यों से भी मिली।

पुस्तक में दुर्गा भाभी और भगवती चरण बोहरा की पारिवारिक पृष्ठभूमि का चित्रण है। दुर्गा का जन्म एक संपन्न परिवार में हुआ और विवाह भी। उनके ससुर कट्टर राजभक्त थे, तो पति जन्मजात विद्रोही और देशभक्त। भगवती चरण ने दुर्गा को पढ़ने-लिखने के लिए प्रोत्साहित किया, किंतु शुरुआत में उन्हें अपनी राजनीतिक गतिविधियों से दूर रखा। लेकिन धीरे-धीरे दुर्गा ने अपने पति की क्रांतिकारी विचारधारा को आत्मसात कर लिया।

महात्मा गांधी ने अगस्त 1920 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया। उनकी अपील पर क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियाँ स्थगित कर दीं। फरवरी 1922 में चौरी-चौरा कांड के बाद गांधीजी ने असहयोग आंदोलन रोक दिया। इससे देश के युवाओं में बहुत निराशा हुई और क्रांतिकारी पुनः सक्रिय हो गए। लेखक ने दिखाया है कि यही वह दौर था, जब बोहरा दंपती सशस्त्र क्रांति का हिस्सा बन गए।

पुस्तक में लाला लाजपत राय द्वारा लाहौर में स्थापित नेशनल कॉलेज का उल्लेख क्रांतिकारियों के गढ़ के रूप में हुआ है। भगवती चरण बोहरा, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव जैसे ओजस्वी क्रांतिकारियों की विचारधारा वहीं परिपक्व हुई। भगवती चरण क्रांतिकारी संगठन 'नौजवान भारत सभा' और 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक संगठन' के सक्रिय सदस्य थे। वह एक लेखक भी थे। उन्होंने इन संगठनों का घोषणापत्र लिखा। उन्होंने लिखा, 'स्वतंत्रता का पौधा शहीदों के रक्त से फलता है। भारत में स्वतंत्रता का पौधा फलने के लिए दशकों से क्रांतिकारी अपना रक्त बहाते रहे हैं।' स्वतंत्रता के पौधे को भगवती चरण ने भी अपने रक्त से सींचा। 28 मई, 1930 को एक बम का परीक्षण करते समय हुए विस्फोट में वह शहीद हो गए। यह बम जेल में बंद भगतसिंह को छुड़ाने के लिए बनाया जा रहा था।

पुस्तक में दुर्गा भाभी के पति की शहादत के बाद के संघर्ष और जीवट का विस्तृत वर्णन है। उस समय दुर्गा भाभी मात्र 23 साल की थीं और उनकी एकमात्र संतान, उनका बेटा शचींद्र, साढ़े चार साल का। शचींद्र का नाम भगवती चरण ने अपने आदर्श, क्रांतिकारी 'शचींद्रनाथ सान्याल' के नाम पर रखा था। भगवती चरण की शहादत के बाद सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद ने दुर्गा भाभी से कहा था, "तुम हम सबकी माँ-बहन हो। तुमने पार्टी के लिए सर्वस्व न्यौछावर किया है। हम सब तुम्हारे ऋणी हैं। तुम्हारे प्रति हम अपने कर्तव्य को कभी नहीं भूलेंगे।"

दुर्गा भाभी की यह जीवनगाथा बताती है कि वह भी देश के प्रति अपने कर्तव्य को कभी नहीं भूलीं। वह अपने पति के मिशन को पूरा करने में तन-मन-धन से लग गईं। वह जान पर खेल कर क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल हुईं और अन्य क्रांतिकारियों की सहायता करती रहीं। बंबई षड्यंत्र केस, जिसमें सार्जेंट टेलर मारा गया था, दुर्गा भाभी की प्रमुख भूमिका रही। उन्होंने क्रांतिकारियों को हथियार मुहैया कराने में भी सक्रिय भूमिका निभाई।

यह पुस्तक दुर्गा भाभी के अदम्य साहस, समर्पण, स्वाभिमान और त्याग की दास्तान है। उन्होंने कई मोर्चों पर सतत् संघर्ष किया। उन्हें वर्षों तक अज्ञातवास का जीवन जीना पड़ा। पुलिस उन्हें कभी पकड़ नहीं पाई। भाभी के असुरक्षित और फरारी जीवन का प्रभाव उनके पुत्र के पालन-पोषण पर पड़ा। अकसर उन्हें अपने बेटे से दूर रहना पड़ा। उनकी पारिवारिक संपत्तियाँ हड़पी गईं। आत्मसमर्पण के बाद जीवनयापन के लिए उन्होंने शिक्षण कार्य चुना। यहाँ भी उनकी मानसिकता परिवर्तनकारी रही। उन्होंने परंपरागत शिक्षा पद्धति से अलग मांटेसरी शिक्षा पद्धति की ट्रेनिंग ली

और लखनऊ में स्कूल खोला, जो आज एक महाविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठापित है।

दुर्गा भाभी और उनके परिजनों से लेखक का व्यक्तिगत संपर्क था, अतः यह जीवनी प्रामाणिक और महत्वपूर्ण है। पुस्तक की भाषा-शैली रोचक और बाँधने वाली है। पुस्तक में क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ीं कुछ दुर्लभ तस्वीरें हैं, जो स्वयं दुर्गा भाभी ने लेखक को उपलब्ध कराई थीं। यह पुस्तक सशस्त्र क्रांतिकारियों की विचार-पद्धति, कार्य-पद्धति और जीवन-पद्धति जानने के लिए भी उपयोगी है।

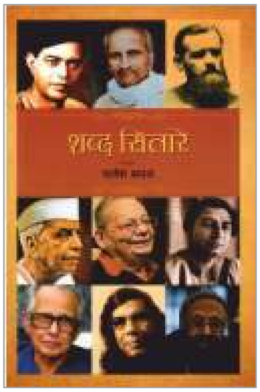

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **राजेश बादल**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 242

मूल्य : रु. 325/-

शब्द सितारे

हर पाठक में अपने प्रिय लेखक के जीवन के बारे में जानने की सहज जिज्ञासा होती है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'शब्द सितारे' पाठकों की इसी रुचि को ध्यान में रखकर लिखी गई है। इसमें दस मूर्धन्य साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर रोचक और ज्ञानवर्धक आलेख हैं। ये साहित्यकार हैं—वृंदावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर, अमृता प्रीतम, माखनलाल चतुर्वेदी, दुष्यंत कुमार, खुशवंत सिंह, राजेंद्र माथुर और फादर कामिल बुल्के। पुस्तक में हम देखते हैं कि किस तरह अपने संघर्षपूर्ण जीवन के हलाहल को पीकर इन रचनाकारों ने हमें साहित्य अमृत प्रदान किया।

पुस्तक के लेखक राजेश बादल इसकी प्रस्तावना में लिखते हैं कि इन साहित्यकारों के बारे में जानना इसलिए जरूरी है कि इनकी रचनाओं में हमें उनके जमाने का संघर्ष और समाज की जानकारी मिलती है और उनमें मौजूदा चुनौतियों के समाधान भी दिखाई देते हैं। लेखक मानता है कि इस पर शोध होना चाहिए कि रचनाओं में इन रचनाकारों के व्यक्तिगत संघर्ष, पारिवारिक पृष्ठभूमि और देश तथा समाज के बारे में उनके अनुभवों का कितना प्रभाव पड़ा है। सीमित कलेवर में इस पुस्तक में ऐसा प्रयास भी किया गया है।

पुस्तक के प्रत्येक आलेख में सबसे पहले साहित्यकार की कृतियों का विवरण दिया गया है। फिर उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा-दीक्षा और जीवन यात्रा के उल्लेखनीय पड़ावों का वर्णन है। इसी क्रम में दिखाया गया है कि जीवन के किस मोड़ पर उनमें लेखन के संस्कार पड़े। लेखक इन साहित्यकारों के जीवन आदर्शों की वर्तमान समय से भी तुलना करता है। पुस्तक पढ़ते हुए कई बार आश्चर्य होता है कि साहित्य और समाज के प्रति ऐसे निष्ठावान लोग भी हुए हैं। यहाँ लेखकों की रचनाओं के कुछ अंश भी दिए गए हैं।

हर साहित्यकार की कुछ-न-कुछ अनोखी विशेषता होती है। पुस्तक के लेखक ने इन साहित्यकारों के लेखन और जीवन के विशिष्ट गुणों के आधार पर इन्हें अलग-अलग विशेषण दिए हैं, जैसे—वृंदावन लाल वर्मा को 'बेजोड़ कथा-शिल्पी', फणीश्वरनाथ रेणु को 'क्रांति दूत', रामधारी सिंह दिनकर को 'ओजस्वी रचनाकार' कहा है। इसी तरह कामिल बुल्के को 'हिंदी का बेटा', दुष्यंत कुमार को 'हिंदी ग़ज़ल का राजकुमार', अमृता प्रीतम को 'प्यार का झरना', खुशवंत सिंह को 'घुमक्कड़ लेखक' और राजेंद्र माथुर को 'सदी का संपादक' कहा गया है। मैथिलीशरण गुप्त 'राष्ट्रकवि' और माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' हैं ही।

साहित्यकारों में अन्याय के विरुद्ध लड़ने का साहस होता है। वृंदावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और रेणु जैसे लेखकों ने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया था। कई लेखकों ने स्वतंत्र देश के नए हुक्मरानों की अंग्रेजों जैसी मानसिकता का विरोध किया। पुस्तक में हम देखते हैं कि दिनकर, रेणु, दुष्यंत कुमार, राजेंद्र माथुर आदि अनेक कलमकारों ने व्यवस्था की विसंगतियों के खिलाफ आवाज उठाई। दुष्यंत ने आपातकाल में अभिव्यक्ति पर पाबंदी के विरोध में लिखा—"मत कहो आकाश में कोहरा घना है, यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।"

साहित्यकार देश और समाज को दिशा दिखाने वाले माने जाते हैं। इसीलिए समाज भी इनका सम्मान करता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मैथिलीशरण गुप्त को 'राष्ट्रकवि' कहकर संबोधित किया था। उन्होंने माखनलाल चतुर्वेदी की वाक् कला की सराहना करते हुए कहा था, "हम सब लोग बात करते हैं, लेकिन बोलना तो माखनलाल जी ही जानते हैं।" पुस्तक में इसका वर्णन है कि किस तरह अनिच्छुक मैथिलीशरण गुप्त को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने महादेवी वर्मा के माध्यम से राज्यसभा की सदस्यता के लिए मनाया था।

हम देखते हैं कि जीवन के उतार-चढ़ाव ने इन साहित्यकारों के लेखन की गति को तो प्रभावित किया, किंतु इनका लगभग पूरा जीवन साहित्य को समर्पित रहा। पुस्तक में कई लेखकों के आखिरी क्षण तक की सक्रियता और कई के जीवन के आखिरी दिनों के अवसाद का मार्मिक चित्रण है। वर्णन इतना भावपूर्ण है कि पाठक इन लेखकों से आत्मीयता महसूस करेंगे।

इस पुस्तक को पढ़कर हम जान पाते हैं कि गांधीजी बाबई जैसे छोटे स्थान पर सिर्फ इसलिए गए थे कि वह माखनलाल चतुर्वेदी की जन्मभूमि है। यह भी कि प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच कर भी मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर और खुशवंत सिंह जैसे लेखक अपनी

जीवन-संध्या में कितना खालीपन और एकाकीपन महसूस करते थे। हम देखते हैं कि रेणु ऐसे लेखक थे, जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन और नेपाल में राजशाही के खिलाफ आंदोलन, दोनों में भाग लिया।

पुस्तक के लेखक का इन साहित्यकारों और इनके साहित्य से अनुराग है, यह हर पृष्ठ पर प्रकट होता है। इसमें साहित्यकारों के जीवन का रोचक, सहज और सरस वर्णन किया गया है। पुरानी और नई पीढ़ी के जिन पाठकों ने इन लेखकों को पढ़ा है, उन्हें इस पुस्तक को पढ़कर विशेष आनंद आएगा। नए पाठकों में इनके साहित्य के प्रति उत्सुकता बढ़ेगी।

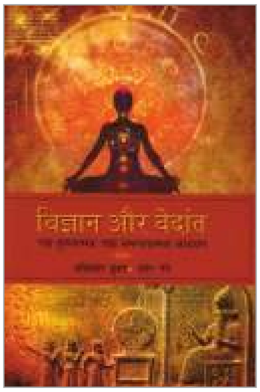

समीक्षक : **योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **शशिकांत शुक्ल, शंकर नेने**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 396

मूल्य : रु. 450/-

विज्ञान और वेदांत :

एक तुलनात्मक तथा समन्वयात्मक अध्ययन

सामान्य धारणा यह रही है कि विज्ञान और दर्शन एक-दूसरे के विरोधी हैं, लेकिन इस पुस्तक को पढ़कर तो यह निश्चित हो गया है कि जहाँ विज्ञान स्वयं को अंतिम मानता है, वहाँ से दर्शन आरंभ होता है। पुस्तक की प्रस्तावना में पूर्व शिक्षामंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर ने लिखा है—"हिंदी में किताब आने से भारतीय वेदांत के विचारों में जो विज्ञान है, उसकी चर्चा अब भारत में सभी प्रांतों में होगी।"

'अपनी बात' में लेखकद्वय ने सच ही लिखा है—"उपनिषदकालीन चिंतन प्रक्रिया में विज्ञान संबंधी विचार विद्यमान नहीं है, यह कहना सच्चाई से मुँह मोड़ना है। उदाहरणार्थ, छान्दोग्योपनिषद में देवर्षि नारद द्वारा दिए गए सनतकुमारों के प्रश्नों के उत्तरों में उस समय अध्ययन किए जाने वाले गणित (राशि) एवं भूतविद्या अर्थात भौतिकशास्त्र का उल्लेख हुआ है।... उसी तरह बोधायन (ई.पू. 800 वर्ष) द्वारा रचित शुल्वसूत्रों में पाइथॉगोरस के गणितीय सिद्धांत का बोधायन से पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा किए गए वर्णनों का उल्लेख है।"

पुस्तक के प्रथम अध्याय 'पश्चिमी एवं पूर्वी विचारधाराओं की महत्वपूर्ण विशेषताएँ' बहुत सारपूर्ण है। लेखक ने बताया है—"विज्ञान की पश्चिमी विचारधारा में चिंतन मन से आगे नहीं पहुँच पाया है। उसमें आत्मन जैसी अवधारणा को कोई मान्यता नहीं है। पश्चिमी वैज्ञानिक विचार के अनुसार मस्तिष्क के अंदर के वस्तुमान की जटिल रचना के बीच होने वाली भौतिक तथा रासायनिक क्रिया का परिपाक है मन।"

दूसरा अध्याय 'पश्चिमी तथा पूर्वी विचार धाराओं के प्रमुख विचारक्षेत्र' भी महत्वपूर्ण है और अनेक भ्रांतियों का निराकरण कराता है। धर्म, पुनर्जन्म और कर्म से जुड़ी धारणाओं को यहाँ स्पष्ट किया गया है।

इस पुस्तक का चौथा अध्याय 'आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान तथा वेदांत सम्मत विश्वोत्पत्ति सिद्धांत' मेरी दृष्टि में तो हमारी प्राचीन चिंतनधारा की विशेषताओं को मूर्त करने में बहुत सफल रहा है। इस अध्याय को पढ़कर वेदांत की गहराइयों का अनुमान सहज ही हो जाता है और हम अपनी भारतीय चिंतनधारा पर गर्व करते हैं। पश्चिमी चिंतन इसके सामने बौना प्रतीत होता है।

पाँचवाँ अध्याय 'जीवात्जजनशास्त्र—सजीव सृष्टि विज्ञान' तो आज के डी.एन.ए., आर.एन.ए. जैसी उन गुत्थियों को वेदांत के संदर्भ में जब हमें समझाता है, तो आश्चर्य होता है कि भारतीय मनीषा कितनी समृद्ध रही होगी, जिसके आधार पर आज का विज्ञान दौड़ रहा है।

आज हमें 'कृत्रिम बुद्धि एवं मानव बुद्धि' को लेकर बहुत चर्चाएँ सुनने को मिलती हैं। इस पुस्तक के छठे अध्याय 'क्या गणितीय सिद्धांत सत्य हैं? कृत्रिम बुद्धि एवं मानव बुद्धि' में विज्ञान की इन नई धारणाओं की परख वेदांत की चिंतनभूमि पर की गई है। आधुनिक संगणक यानी कंप्यूटर विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाया गया है। मनुष्य की 'अंतःप्रेरणा-प्रतिभा' को लेखकद्वय ने यहाँ भारतीय दर्शन के माध्यम से स्पष्ट किया है, जो विज्ञान की सोच को थोथा सिद्ध कर देता है।

पुस्तक के सातवें और आठवें अध्यायों में लेखकों ने 'विज्ञान तथा वेदांत-विचार से जुड़ी कतिपय अन्य महत्वपूर्ण अवधारणाएँ' शीर्षक से मूल्यवान सामग्री दी है। पुस्तक का नौवाँ अध्याय 'आत्मन या चैतन्य शक्ति, भूत-भविष्य की क्षमता, मृत्यु, शरीर की मूलावस्था एवं आत्मा का अमरत्व' तो प्राचीन भारतीय दार्शनिक चिंतन का निचोड़ ही प्रस्तुत कर देता है। इस अध्याय को पढ़कर तो अनेक जिज्ञासाओं का शमन सहज ही हो जाता है। यहाँ 'मंत्रोच्चार, नाम-स्मरण, संगीत और तादात्म्य' की भारतीय अवधारणाओं की प्रासंगिकता और महत्ता को जानकर लगता है कि कबीरदास को गुरु रामानंदाचार्य ने 'सुरति' और 'नाम-स्मरण' को जाप रूप में क्यों दिया था? संगीत को लेकर कहा गया है—"पश्चिमी संगीत स्वर संगति पर आधारित है, जबकि भारतीय संगीत की बुनियाद स्वर-सप्तकों का स्वर माधुर्य है।"

इस मूल्यवान पुस्तक के अंतिम 11वें अध्याय 'समग्रतावादी विज्ञान से मानवता का सर्वांगीण विकास' में वेदांत विचार को विज्ञान के लिए उपयोगी सिद्ध किया गया है। 'अपरा विद्या तथा परा विद्या' पर बहुत सार्थक चिंतन हुआ है। 'वैदिक कालीन धर्म का उद्‌देश्य' परिशिष्ट में लिखा गया है—"वैदिक काल में 'प्रेय और श्रेय' और प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों के बीच ध्येय कौन-सा होना चाहिए, यह धर्म का उद्‌देश्य था, इस बारे में भी धर्म से मार्गदर्शन मिलता था।"

निष्कर्ष रूप में कह सकता हूँ कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने यह पुस्तक प्रकाशित करके 'ज्ञान के प्रचार-प्रसार' के अपने उद्‌देश्य की सर्वोत्तम पूर्ति की है। इस पुस्तक का तो सर्वत्र स्वागत होना ही चाहिए।

भारत में जनसंख्या स्थिरीकरण की तलाश

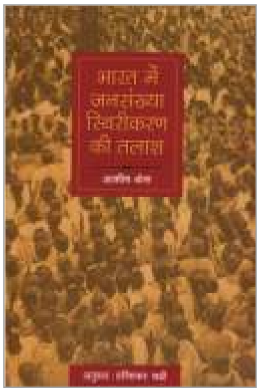

समीक्षक : **सोमदत्त शर्मा**

लेखिका : **आशीष बोस**

अनुवादक : **हरिशंकर राढ़ी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 208

मूल्य : रु. 240/-

पुस्तक जनसंख्या और विकास पर केंद्रित है। इससे पता चलता है कि भारत में जनसंख्या विस्फोट को लेकर सन् 1935 से ही चिंता व्यक्त की जाने लगी थी। सन् 1939 में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जनसंख्या वृद्धि के राष्ट्रीय विकास पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में चिंता व्यक्त की थी।

आजाद भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर 11वीं पंचवर्षीय योजना तक किसी-न-किसी रूप में जनसंख्या के आँकड़ों को विकास के लिए आधार बनाया जाता रहा है। नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व काल में, सन् 1994 में, डॉ. स्वामीनाथन समिति बनाई गई थी। इस रिपोर्ट में पहली बार जनसंख्या को व्यापक संदर्भों में देखने का प्रयास किया गया था।

रिपोर्ट में जनसंख्या एवं पर्यावरण, लैंगिक समानता तथा गरीब समर्थक नीतियों को आमजन के स्तर पर लागू करने में पंचायती राज संस्थाओं को शामिल करने जैसे मुद्‌दों पर नई दृष्टि दी गई। शोध बताते हैं कि प्रारंभ में पंडित नेहरू जनसंख्या को जनशक्ति मानते थे। लेकिन शीघ्र ही उनकी समझ में आ गया कि देश में उपलब्ध संसाधनों तथा जनसंख्या का समानुपातिक स्वरूप बिगड़ते ही देश की अराजकता बढ़ सकती है, अतः आजाद भारत के विकास के लिए बनाई गई प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) से लेकर 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) के निर्माण तक जनसंख्या नियंत्रण की चिंता विकास नीति के केंद्र में रही।

प्रारंभ में विश्वास किया जाता था कि भारत में जनसंख्या स्थिरीकरण का लक्ष्य आजादी के बाद के कुछ वर्षों में प्राप्त कर लिया जाएगा। इसलिए सन् 1971 की जनगणना के आधार पर संसदीय और विधानसभा की सीटों की संख्या को सन् 2001 तक के लिए स्थिर कर दिया गया था। बाद में इसे सन् 2026 तक आगे बढ़ा दिया गया। आशीष बोस के अनुसार, इससे उत्तर और दक्षिण के राज्यों में जनसंख्या अंतराल वृद्धि के कारण राजनैतिक विसंगति उत्पन्न होती है। लोकतंत्र के लिए यह कोई शुभ लक्षण नहीं है।

इस प्रकार, जनसंख्या वृद्धि से राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और पर्यावरणिक समस्याओं के साथ-साथ रोजगार और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ती हैं। यह कार्य बिना जनचेतना विकसित किए असंभव है। जोर-जबरदस्ती का प्रयास श्रीमती इंदिरा गांधी के समय में संजय गांधी ने किया था, फलतः श्रीमती गांधी को सत्ता से हाथ धोना पड़ा। बाद की सभी सरकारों ने इस स्थिति को समझा था इसलिए उन कारणों पर ध्यान दिया जिनसे जनसंख्या बढ़ती है। पुत्र प्राप्ति की कामना उनमें से एक बड़ा कारण था। दूसरे, एक से अधिक संतान की कामना इसलिए भी की जाती थी क्योंकि सरकारें जनसाधारण को यह विश्वास दिलाने में विफल रही थीं कि यदि परिवार में एक बच्चा पैदा होगा तो वह स्वस्थ और जीवित रहेगा।

आज इतने वर्षों के प्रयास का परिणाम है कि भारत सन् 2045 तक जनसंख्या स्थरीकरण में सफल हो जाएगा, ऐसी आशा बँधी है। पुस्तक तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में उन महत्वपूर्ण घटनाओं का क्रमवार वर्णन किया गया है जिनसे जनसंख्या स्थिरीकरण की योजनाओं को बल मिला है। दूसरे भाग में पहली से 11वीं पंचवर्षीय योजना तक जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए किए गए उपायों की चर्चा की गई है। तीसरे भाग में, जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न उत्तर-दक्षिण के बीच बढ़ते भेद, कन्या भ्रूण हत्या प्रसार, रक्ताल्पता में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि के सफल प्रतिदर्श तथा जनगणना और आम आदमी आदि विषय पर ध्यान दिया गया है।

इनके अतिरिक्त पुस्तक में आँकड़े देकर जनसंख्या आकार, प्रजनन दर, गर्भ निरोधी तरीकों का प्रयोग आदि के बारे में तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। कुल मिलाकर पुस्तक शोधपूर्ण है। जानकारी प्रामाणिक है। अनुवाद सरल और सहज है।

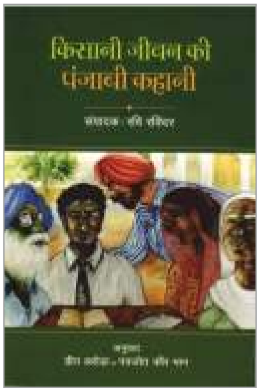

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

संपादक : **रवि रविंदर**

अनुवादक : **प्रीत अरोड़ा, नवजोत कौर मान**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 482

मूल्य : रु. 510/-

किसानी जीवन की पंजाबी कहानी

'किसानी जीवन की पंजाबी कहानी' ऐसी कहानियों का लाजवाब संग्रह है, जिसमें धर्म एवं किसानी के पारस्परिक संबंधों को इस ढंग से उजागर किया गया है मानो सदृश घटते हुए प्रतीत हो रहे हों। पंजाब में किसानी का अपना ही अलग महत्व रहा है, जिसे इस पुस्तक में विभिन्न कहानीकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है।

अगर नौरंग सिंह की कहानी 'बालियाँ' की बात की जाए तो इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने अविभाजित पंजाब के किसान की मौत के बाद उसके परिवार में पैदा होने वाली दुश्वारियों-बदहालियों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है और यह बदहाली भी किसान खुद की गलत आदतों के कारण पैदा करता है। फिर जब बदहाली का भार उसके कंधों को तोड़ने लगता है, तो वह इस दुनिया से विदाई ले लेता है और पीछे छोड़ जाता है बीमार पत्नी और भूख से बिलबिलाते बच्चे। बीमारी की झुलसन पत्नी भी नहीं झेल पाती और अंततः वह भी प्राण त्याग देती है। इससे दो अल्हड़ उम्र के बच्चे सकते में आ जाते हैं। अचानक इतनी-सी उम्र में माता-पिता का इस दुनिया से चले जाना उनके लिए बड़ा कठिन समय बन जाता है। उनके आस-पास में ऐसा कोई भी नहीं, जो उन्हें ढाढ़स बँधा सके, जो दाह-संस्कार में उनकी किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता कर सके। इससे यह बात सामने आती है कि आर्थिक रूप से मरने का मतलब है हर प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होना। आर्थिक रूप से बदहाल दोनों बच्चे भूख से भी बुरी तरह से बदहाल हैं। उनके दिमाग में आता तो है कि क्यों न मरी माँ की कब्र खोदकर 'बालियाँ' उतार ली जाएँ, लेकिन उनके अंदर की 'मनुष्यता' उन्हें ऐसा करने से रोक देती है।

जोगिंदर सिंह निराला की कहानी 'सल्फास' भी एक ऐसी ही कहानी है, जिसमें एक किसान का 'स्वप्निल संसार' न केवल मंडीकरण के कारण, बल्कि कुदरत के कहर के कारण भी बिखरकर रह जाता है। नतीजा यह होता है कि उसे अपने प्यारे ट्रैक्टर को बेचना पड़ जाता है, यहाँ तक कि उसे अपने बच्चे का दाखिला सरकारी स्कूल तक में कराना पड़ जाता है, लेकिन उसके सिर पर 'फण' फैलाए बैठा कर्जा उसे साँस तक नहीं लेने देता। आखिर खुद को समेटने के बाद भी जब कर्जा जस-का-तस बना रहता है, तो उसे फिर एक ही रास्ता सुझाई देता है इस समस्या से छुटकारा पाने का और वह 'सल्फास' के नाम अपना जीवन भेंट चढ़ाने का फैसला कर लेता है, हालाँकि अपने बच्चे की मासूमियत देख वह अपना इरादा बदल लेता है।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ अपने आप में किसानी जीवन की यथार्थता को समेटे हुए हैं, फिर चाहे वह 'साँझा चूल्हा' हो या 'साँझी खेती', 'दीमक' हो या 'शहर मत जा' या फिर 'तू निहालामत बनना'—सभी कहानियाँ उत्कृष्ट एवं पठनीय हैं, जो 'किसानी समाज' की वास्तविकता को धरातल पर उकेरती दिखाई देती हैं। इस संग्रह की सबसे खास बात यह है कि अनुवादकों ने पंजाबी भाषा की इन कहानियों का बड़ा ही सरल एवं सरस अनुवाद किया है, जबकि भाषा-शैली भी आम जुड़ाव की है।

इस कहानी-संग्रह की एक बड़ी खास बात यह है कि इसमें संगृहीत हर कहानी में धरातलीय वास्तविकता को उकेरा गया है, जिससे पाठक स्वयं को बँधा-जुड़ा हुआ महसूस करता है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा नेहरू बाल पुस्तकालय के अंतर्गत प्रकाशित बाल साहित्य का गुलदस्ता

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

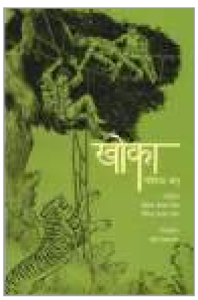

खोका

लेखिका : **मोपिया बसु**; *अनुवादक* : **शैलेन्द्र प्रताप सिंह, धीरेन्द्र प्रताप सिंह**; *पृष्ठ* : 142; *मूल्य* : रु. 90/-

अंग्रेजी साहित्य में परास्नातक की डिग्री हासिल करने वाली मोपिया बसु की मूल कृति 'खोका' अंग्रेजी भाषा में है, जिसका हिंदी भाषा में अनुवाद किया है शैलेन्द्र प्रताप सिंह और धीरेन्द्र प्रताप सिंह ने। न्यास द्वारा हिंदी, अंग्रेजी सहित 55 से अधिक भाषाओं व बोलियों में पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है तथा बच्चों की पुस्तकों का प्रकाशन, सदैव से संस्था की प्राथमिकता रही है। बांग्ला भाषा में 'खोका' नाम एक तरफ अपने बेटे के लिए एक माँ की ममता और लाड़-प्यार का द्योतक है, तो दूसरी तरफ यह नाम प्रेम, स्नेह, उम्मीद और प्रेरणा का प्रतीक भी है।

यद्यपि हिंदी भाषा में खोका का अर्थ है—खोल, कोटर, डिब्बा, हुंडी लिखा हुआ कागज। वह हुंडी जिसका रुपया अदा किया जा चुका हो। ऐसे अनेक शब्द हैं जिसका अर्थ एक भाषा में कुछ और है, तो दूसरी भाषा में कुछ और। इस प्रकार इस अर्थ भिन्नता को लेकर बुद्धिमान लोग आपस में अनर्गल वाद-विवाद नहीं करते।

यह पुस्तक कहानियों का संग्रह है, जिसमें कुछ छोटी, कुछ बड़ी कहानियाँ हैं, जो आठ खंडों में विभक्त हैं, जिसका नायक 'खोका' है। मात्र तीन वर्ष की आयु में अपने पिता को खोने वाले बालक खोका का बचपन बांग्लादेश के मैदानी भागों से लेकर वर्तमान झारखंड के पठारी क्षेत्रों में अपने कई रिश्तेदारों के यहाँ गुजरा है।

ऐसे हालातों में पलने-बढ़ने के बावजूद खोका का बालपन, किशोरावस्था मस्ती और रोमांच से भरे वातावरण में बीता है। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जन्मे खोका के रोमांचक कारनामों और घटनाओं से भरी हुई कहानियों को करीब पचास साल बाद अपने बेटे प्रह्लाद को उसकी माँ सुनाती है। खोका और प्रह्लाद के जन्म में करीब 50 साल का फासला है, इसलिए इस फासले में कई तरह के बदलाव आ गए हैं।

पहले खंड की डायरी में दर्ज वृत्तांत को जब मालती अपने बेटे प्रह्लाद को बताती है कि खोका नाम का एक छोटा बच्चा कैसे नारायण गंज (अब बांग्लादेश में है) के मैदानी इलाके में रहता था और हर रोज एक नहर पार करके धान के खेतों से होते हुए, तीन किलोमीटर चलकर सुबह सात बजे अपने स्कूल पहुँचता था। यह सुनकर महानगर में पलने-बढ़ने वाला प्रह्लाद अचंभित हो जाता है। यह बात उसकी कल्पना से परे की है।

दूसरे खंड में दर्शाया गया है कि खोका को बचपन से ही देशभक्ति की कहानियाँ प्रिय लगती हैं। 'शेरलॉक होम्स' और हेमेन्द्र कुमार राय की जासूसी कहानियाँ वास्तविक जीवन में भी उसे गुप्तचर बनने के लिए प्रेरित करती थीं। खोका के पिता संतोष भूषण बोस की मौत 'तपेदिक' नामक बीमारी से हुई थी, जब खोका मात्र तीन साल का था और उसकी बड़ी बहन खोकी छह साल की।

खंड तीन में मालती प्रह्लाद को महुआ के फूलों की नशीली गंध के बारे में बताती है कि छोटानागपुर पठार की हरी-भरी घाटियों में फूलों के मीठे रस को पीकर कैसे भालू झूमकर नाचा करते थे। गिरिडीह का घना जंगल प्रसिद्ध रॉयल टाइगर का घर माना जाता था।

खंड पाँच में सुभाषचंद्र बोस यानी नेताजी की चर्चा है। जब नेताजी ने रेडियो से देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था—"यह आपकी अपनी सेना है, हमारी आजाद हिंद फौज। साथियो! सैनिको! तुम्हारा नारा होगा—दिल्ली चलो, दिल्ली चलो।" यद्यपि नेताजी गांधीजी का सम्मान करते थे, पर उनके ढुलमुल रवैये और गोलमेज सम्मेलनों से बहुत निराश थे। नेताजी पंजाब प्रांत की उत्तर-पश्चिमी सीमा, सिंध और अफगानिस्तान होते हुए अंततः जर्मनी पहुँचे, जहाँ उन्होंने मुसोलिनी और हिटलर से हाथ मिलाया। हालाँकि हिटलर पहले हिचकिचाया, लेकिन अंततः उसने बिना शर्त सहयोग किया।

खंड सात में जगदीशचंद्र बोस का जिक्र किया गया है जिन्होंने अपनी प्यारी मातृभूमि के सुदूर कस्बे में स्थित अपने घर में अंतिम साँस ली। वह महान व्यक्ति जिस प्रसिद्धि और सम्मान का हकदार था, उससे दूर ही रहा।

छोटे-छोटे बच्चों के रोमांचकारी कारनामों को सुनकर प्रह्लाद चकित हो जाता है। 50 साल के अंदर इतना बदलाव आ गया है कि लगता नहीं कि अतीत में ऐसा कुछ हुआ होगा, पर छोटे-छोटे बच्चे जिनकी उम्र चार साल (बेनू), आठ साल (नीमू), 11 साल (खोका) है, के साहस भरे अभियानों को दर्शाया गया है। तरह-तरह के रोमांचों से भरी इस कहानी के अंत में रहस्य का परदा उठता है कि खोका कौन था?

कहानी के अनुकूल पार्थ सेनगुप्ता का चित्रांकन कहानी को जीवंत बनाता है। समग्रता में यह कहानी-संग्रह दो पीढ़ियों के लंबे अंतराल को जोड़ता है।

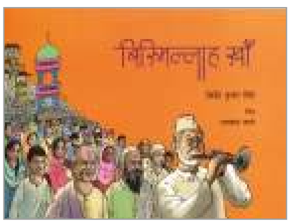

बिस्मिल्लाह खाँ

लेखक : **शिवेंद्र कुमार सिंह**; *पृष्ठ* : 32; *मूल्य* : रु. 70/-

बच्चे देश-विदेश के साहित्यकार, कलाकार, वैज्ञानिक आदि विभूतियों को जानें, इसके लिए 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत' निरंतर ऐसी पुस्तकों को प्रकाशित करता रहता है। बिस्मिल्लाह खाँ की जीवनी से बच्चों को सरल-सहज शब्दों में परिचय कराने वाले शिवेंद्र कुमार सिंह मूलतः खेल पत्रकार हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रति लगाव को लेकर उन्होंने 'राजगीरी' नाम की संस्था शुरू की है। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ एक प्रख्यात भारतीय शहनाई वादक थे, जिन्होंने शहनाई को भारत में ही नहीं, बल्कि भारत के बाहर भी एक विशिष्ट पहचान दिलाने में अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने संगीत के इस पावन साज को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई।

संगीत के क्षेत्र में असाधारण योगदान के लिए वर्ष 2001 में उन्हें देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा गया। इसके पूर्व उन्हें अनेक संस्थानों से सम्मान प्राप्त हुए, यहाँ तक की भारत सरकार भी उन्हें पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण से सम्मानित कर चुकी थी।

बिस्मिल्लाह खाँ का बचपन का नाम अमरूद्दीन था। बिहार के डुमराँव राज्य में जन्मे बिस्मिल्लाह खाँ को बचपन से ही शहनाई बजाने में गहरी रुचि थी जो माँ के आशीर्वाद तथा नाना के सान्निध्य में शिव बाबा की नगरी, काशी में जागृत हुई। बिस्मिल्लाह खाँ फटी धोती पहनने को राजी थे, पर फटे सुर को वह किसी भी स्तर पर स्वीकार करने को राजी नहीं थे। इस पुस्तक में बिस्मिल्लाह खाँ के प्रति जाकिर हुसैन, हरिप्रसाद चौरसिया, अमजद अली खान, पंडित जसराज, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, के.आर. नारायणन, मनमोहन सिंह एवं नरेंद्र मोदी के विचार हैं। कथानक के अनुसार इस्माईल लहरी की तसवीरें बच्चों के लिए इस पुस्तक को और रोचक बनाती हैं।

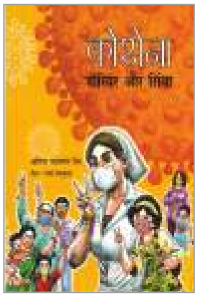

कोरोना वॉरियर और सिंबा

लेखिका : **अनिता भटनागर जैन**; *पृष्ठ* : 32; *मूल्य* : रु. 70/-

चीन से शुरू हुआ कोविड-19 वायरस दुनिया के अनेक देशों में कोहराम मचा रहा था। लाखों लोग इस वायरस से संक्रमित हो चुके थे। अनेक लोग रोज काल के मुँह में समा रहे थे। इस वायरस से संक्रमित लोगों के उपचार के लिए दवा नहीं बन पाई थी, ऐसे में पूरी दुनिया के लोग सरकारी आदेश से अपने-अपने घरों में कैद थे। सावधानीपूर्वक जीने के लिए जरूरी चीजें लोगों को मुहैया कराई जा रही थीं। लोग इस वायरस से संक्रमित न हों, इसके लिए प्रतिदिन हर देश की सरकारें अपने यहाँ के निवासियों को दिशा-निर्देश देती थीं। हाथों को कैसे सेनेटाइज करें, मुँह पर मास्क पहने रहें, जो आज भी जारी है। कई महीनों तक लोग अपने-अपने घरों में बंद रहे। अब तो इस वायरस से बचाव के लिए कुछ महीनों से टीके लगने लगे हैं, और उसके परिणाम सार्थक निकले हैं।

हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में सतत लिखने वाली डॉ. अनिता भटनागर ने इस पुस्तक में कोरोना वॉरियर के लगन, निष्ठा को बड़े ही सरल-सहज शब्दों में उकेरा है। कोरोना वॉरियर हेमा एक मेडिकल कॉलेज में नर्स है। वह अपने ड्यूटी के प्रति इस तरह समर्पित है कि अपनी छोटी बेटी के जन्मदिन में भी शामिल नहीं होती।

'सिंबा का नया जीवन' शीर्षक कहानी में रेजिडेंट वेलफेयर सोसाइटी का क्रूर निर्णय चार साल के पालतू सिंबा के जीवन को खतरे में झोंक देता है। सिंबा की मार्मिक कहानी दिल को छू जाती है। जबकि मुंबई से प्रयागराज पैदल जाने वाले गरीब मजदूर कैसे अपने परिवार के साथ अपने छोटे से कुत्ते एवं बतख के बच्चे को टोकरी में रखकर ले जाते हुए दिखाई दे रहे हैं। यह पुस्तक जीवन के अनेक पक्षों को खोलती है। पार्थ सेनगुप्ता की सुंदर लुभावन तसवीरें बच्चों के मन में कहानी के प्रति और दिलचस्पी पैदा करती हैं।

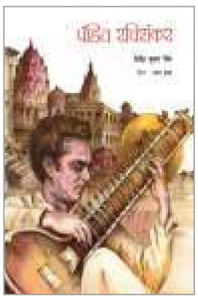

पंडित रविशंकर

लेखक : **शिवेंद्र कुमार सिंह**; *पृष्ठ* : 28; *मूल्य* : रु. 65/-

बाल साहित्य के प्रति बच्चों के रुझान में बढ़ोतरी हो, इस तथ्य को ध्यान में रखकर लिखी गई शिवेंद्र कुमार सिंह की यह पुस्तक जिसे 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत' ने प्रकाशित किया है। पंडित रविशंकर प्रसाद को जानने-समझने में गहरी रुचि पैदा करेगी। 07 अप्रैल, 1920 में जन्मे श्याम शंकर चौधरी एवं हेमांगिनी देवी के पुत्र पंडित रविशंकर को 1999 में देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया था। भारत के बाहर भी पंडित रविशंकर को तमाम सम्मान मिले, उसमें पाँच 'ग्रैमी अवॉर्ड' शामिल हैं। अंग्रेजी संगीतकार-गायक-गीतकार और फिल्म निर्माता, बीटल्स के प्रमुख गिटारवादक के रूप में अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जॉर्ज हैरिसन ने कहा था—"पंडित रविशंकर विश्व संगीत के पितामह हैं।"

'पद्मभूषण', 'पद्मविभूषण' से सम्मानित पंडित रविशंकर को 1986 में राज्यसभा का सदस्य भी नियुक्त किया गया था। बचपन में पंडित रविशंकर के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। माँ से पिता अलग हो गए थे, ऐसे में उनकी माँ को परिवार के पालन-पोषण के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। सात भाई-बहनों के परिवार में सबसे छोटा रॉबिंद्र (रविशंकर) अपनी माँ के संघर्ष को देखकर बहुत दुखी रहता था। उनके बड़े भाई उदयशंकर लंदन ने पढ़ाई करने के बाद भारतीय कला-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए लगभग पूरी दुनिया की सैर की।

पंडित रविशंकर ने विश्वविख्यात फिल्म 'पाथेर पांचाली' का संगीत तैयार किया, 'अपू ट्रायलॉजी' का संगीत बनाया, रिचर्ड एटनबरो की फिल्म 'गांधी' का संगीत तैयार किया। इसके साथ ही अनेक उल्लेखनीय कार्य किए। सरल-सहज शब्दों में लिखी गई यह पुस्तक बच्चों की प्रेरणास्रोत बनेगी कि कैसे गरीबी में भी संघर्ष करके बड़े लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। अरूप गुप्ता की तसवीरें कहानी के अनुकूल हैं।

पंडित राधेश्याम कथावाचक सिनेमा से पहले मनोरंजन के प्रमुख साधन रहे पारसी थियेटर के पुरोधा आगा हश्र कश्मीरी, नारायण प्रसाद बेताब के साथ की एक महत्वपूर्ण कड़ी थे। वे लोकप्रिय कथावाचक ही नहीं, बल्कि एक खास तर्ज में बनाई गई और देश-विदेश में लोकप्रिय रामायण 'राधेश्याम रामायण' के लेखक भी थे। उन्होंने अपनी और अन्य लेखकों की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए बरेली में 1917 में 'राधेश्याम प्रेस' लगाई और 'भ्रमर' नाम से श्रेष्ठ साहित्यिक मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन किया जिसमें प्रेमचंद की कहानियाँ भी प्रकाशित होती थीं। अपने नाटकों से पारसी थियेटर में हिंदी और देशभक्ति तथा सामाजिक सुधारों की पृष्ठभूमि भी उन्होंने तैयार की। ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के मालिक पंडित राधेश्याम कथावाचक पर हरिशंकर शर्मा काफी समय से कार्य कर रहे हैं। हाल ही में उनके द्वारा लिखित 'पंडित राधेश्याम कथावाचक : डायरी का व्याकरण' और संपादित पुस्तक 'पंडित राधेश्याम कथावाचक : रंगायन' बोधि प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित होकर आई हैं।

राधेश्याम कथावाचक ने अपने समय में जो प्रतिष्ठा और सम्मान पाया, उसके बारे में अब तक जो जानकारी उपलब्ध है, वह उनके द्वारा 1959 में लिखी गई उनकी आत्मकथा 'मेरा नाटक-काल' से ही प्राप्त होती है। इससे हम मुख्यतः उनके पारसी थियेटर के लिए किए गए महत्वपूर्ण कार्य की जानकारी विस्तार से पाते हैं। लेकिन इसके अलावा भी उनकी एक सामाजिक और पारिवारिक दुनिया रही होगी, उसकी जानकारी के कोई साधन हमारे पास न थे। हरिशंकर शर्मा ने अपने अथक प्रयासों से उनकी डायरियाँ खोजकर, उनके आधार पर 'डायरी का व्याकरण' शीर्षक से महत्वपूर्ण किताब लिखी है। इससे उनके लेखन, उनकी व्यक्तिगत दुनिया

याद पारसी थियेटर के पुरोधा राधेश्याम कथावाचक की

पं. राधेश्याम कथावाचक : डायरी का व्याकरण

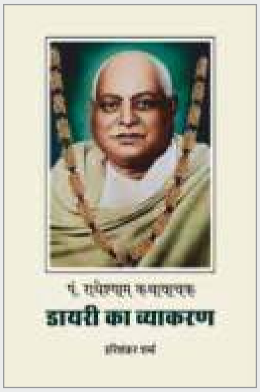

समीक्षक : **अजय कुमार शर्मा**

लेखक : **हरिशंकर शर्मा**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

पृष्ठ : 112

मूल्य : रु. 150/-

पं. राधेश्याम कथावाचक : रंगायन

समीक्षक : **अजय कुमार शर्मा**

संपादन : **हरिशंकर शर्मा**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

पृष्ठ : 304

मूल्य : रु. 299/-

जैसे—उनकी पसंद-नापसंद, मित्र-परिवार-कुटुंब, शौक-व्यापार, स्वास्थ्य, देश-दुनिया के विभिन्न मुद्दों पर उनकी राय, बरेली के तत्कालीन वातावरण और उनके जीवन के अंतिम समय में चल रही कश्मकश के बारे में जाना जा सकता है। ये डायरियाँ वे बाग में बैठकर लिखते थे और इन अप्रकाशित डायरियों के वर्ष हैं—1910, 1937, 1939, 1959 और 1960। 'वे डायरी क्यों लिखते हैं', पर उन्होंने 30 दिसंबर, 1959 को खुद लिखा है, "जिस दिन मेरे दिमाग की हालत जैसी रही है, वह इससे जाना जा सकता है इसमें मेरी कमजोरी-ताकत का पता लग सकता है।" 'इन डायरियों में क्या मिलेगा', पर भी वे इसी दिन लिखते हैं, "कथावाचक के नाते मेरा धार्मिक जनता से सीधा संपर्क रहा है। उसी को सामने रखकर लिखा है कि धर्मात्मा, सत्यवादी, ईमानदार लोग आजकल दुखी हैं। बेईमान-कूटनीतिज्ञ सुखी हैं। तब मेरी आँख हुकूमत पर क्यों न जाए और उनकी आलोचना क्यों न करूँ। यही प्रायः इस डायरी में अनेक रूपों में मिलेगा।" अतः इन डायरियों में देश के स्वार्थी नेताओं, सरकारी कर्मचारियों की घूस, पत्रकारिता के गिरते स्तर, नाजायज धन के साथ ही अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम और द्वितीय विश्वयुद्ध पर भी उन्होंने अपने बेबाक विचार व्यक्त किए हैं। अपने कुछ परिचितों महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, संपूर्णानंद, जवाहरलाल नेहरू और विनोबा भावे पर भी रोचक टिप्पणियाँ हैं। 112 पृष्ठ की इस पुस्तक से कुछ निम्न रोचक और सारगर्भित जानकारियाँ भी मिलती हैं, जैसे—24 दिसंबर, 1960 के दिन लिखी डायरी से ज्ञात होता है कि उनके तीन नाटक 'उद्धार' (1944), 'आजादी' (1951) एवं 'धना भक्त' (1951) अप्रकाशित हैं। उनके मन में 'रावण राज्य' शीर्षक से एक नाटक लिखने की कल्पना की थी, जो राजनीति पर केंद्रित होता।

राधेश्याम जी के बचपन के नाम 'लल्लू' एवं 'रामगोपाल' थे, किंतु एक छद्म नाम 'अधीर' भी था। उन्होंने इस नाम से 1920 से 1929 के बीच उनके द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'भ्रमर' में सैकड़ों कविताएँ लिखीं। मदनमोहन मालवीय को वे इतना आदर देते थे कि उनका एक पत्र फ्रेम में लगवा कर हॉल में टाँगा हुआ था। उन्हें गंगा स्नान का शौक था।

दूसरी संपादित पुस्तक रंगायन जो कि 304 पृष्ठों की है, में राधेश्याम कथावाचक के लिखे समस्त नाटकों की विस्तृत चर्चा है। इसके लिए संपादक ने उन पर प्रकाशित सभी नए-पुराने लेखों को शामिल करने का प्रयास किया है। कुछ पुराने और प्रतिष्ठित लेखक हैं—प्रेमचंद, गोपीवल्लभ उपाध्याय, विशंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', माधव शुक्ल, द्वारिका प्रसाद बी.ए, लक्ष्मीनारायण लाल, भोलानाथ शर्मा और क्षेमचंद्र सुमन आदि। वर्तमान के शामिल किए गए लेखक हैं—रणवीर सिंह, मधुरेश, हेतु भारद्वाज, पामेला लोथस्पीच, राघवाचार्य, सुधीर विद्यार्थी, सुरेंद्र मोहन मिश्र, प्रभात आदि। पुस्तक के संपादक हरिशंकर शर्मा के भी चार लेख हैं। पुस्तक में स्वयं राधेश्याम कथावाचक द्वारा लिखे गए तीन लेख शामिल हैं जिसमें एक लेख वह है जो 'माधुरी' पत्रिका के आत्मकथा अंक में जनवरी-फरवरी 1932 में प्रकाशित हुआ था। कुछ नाटकों के प्रथम संस्करणों की भूमिकाएँ भी हैं जो उन्होंने स्वयं लिखी थीं। प्रेमचंद द्वारा 'माधुरी' में उनके नाटकों तथा अन्य समकालीन नाटकों पर लिखे लेख का भी संकलन किया गया है। उस समय के महत्वपूर्ण समकालीन लेखकों द्वारा उनके नाटकों की भूमिका या उन पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित टिप्पणियों को भी शामिल किया गया है। पूरी पुस्तक के अध्ययन से जहाँ हम पारसी थियेटर की समकालीन दुनिया और उसकी विभिन्न गतिविधियों को अच्छी तरीके से समझ सकते हैं वहीं कथावाचक द्वारा लिखे नाटकों—वीर अभिमन्यु (1915), श्रवण कुमार (1916), परम भक्त प्रहलाद (1917), परिवर्तन (1917), उषा-अनिरुद्ध (1924), श्रीकृष्ण अवतार (1926), मशरिक्रीहूर (1926), रुक्मणी-मंगल (1927), ईश्वर भक्ति (1929), द्रौपदी स्वयंवर (1919), महर्षि वाल्मीकि (1932), सती-पार्वती (1939), देवर्षि नारद (1961) की रचना प्रक्रिया और उनके प्रदर्शनों की जानकारी विस्तार से प्राप्त कर सकते हैं। इस सबसे पारसी थियेटर की भाषा और नाटकों के स्तर और उनके विषयों में सुधार के लिए राधेश्याम कथावाचक द्वारा किए गए प्रयासों को भी जान और समझ सकते हैं।

महाभारत के प्रसंग पर आधारित 'वीर अभिमन्यु' उनका पहला नाटक था जो 1915 में लिखा गया, जिसका न्यू अल्फ्रेड कंपनी द्वारा 04 फरवरी, 1916 को दिल्ली में पहली बार मंचन किया गया। बाद में इस नाटक को असाधारण सफलता मिली। राधेश्याम कथावाचक के सामने ही इसकी एक लाख से ज्यादा प्रतियाँ छप चुकी थीं। इस नाटक पर अमेरिका में एशियन स्टडीज की प्रोफेसर पामेला लोथस्पिच की ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित पुस्तक 'द एपिक नेशन : रिमेंजनिंग द महाभारत इन द एज ऑफ द एंपायर' के लेख 'वीर अभिमन्यु एंड द फैबुलस पारसी थियेटर' का नितिन सेठी द्वारा किए गए हिंदी अनुवाद को भी शामिल किया गया है। पुस्तक में छपे कुछ आलेखों से हम फिल्मों के लिए किए गए उनके कार्यों, उनके द्वारा लिखी गई राधेश्याम रामायण के बारे में भी अच्छी तरह जान सकते हैं। कुल मिलाकर इस पुस्तक से हम पारसी थियेटर के उत्कर्ष काल के आधार स्तंभ राधेश्याम कथावाचक द्वारा पारसी थियेटर की व्यावसायिक और चकाचौंध से भरी दुनिया में रहते हुए भी एक नए प्रगतिशील रास्ते की तलाश करने की रोचक यात्रा को देख सकते हैं।

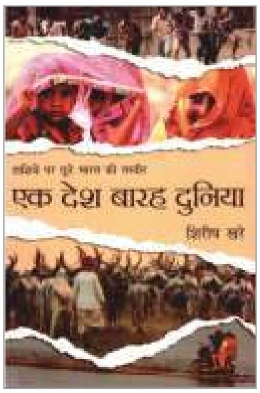

समीक्षक : **ब्रजेश राजपूत**
लेखक : **शिरीष खरे**
प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली।
पृष्ठ : 206
मूल्य : रु. 295/-

एक देश बारह दुनिया

'एक देश बारह दुनिया' कहानी संकलन में उस दुनिया की कहानियाँ हैं जिनको लोग भुला बैठे हैं। ये सच्ची कहानियाँ झकझोरती हैं। इनको पढ़कर हैरानी होती है। आप सोचेंगे कि क्या यह दुनिया आस-पास है? यदि है तो फिर यह दुनिया आँखों से ओझल क्यों हो गई? यह दुनिया लोगों को दिख क्यों नहीं रही है? इस दुनिया के दुख-दर्द इतने अलग क्यों हैं? इस दुनिया के लोगों के लिए सरकार कुछ कर क्यों नहीं रही? दरअसल इस दुनिया के रहवासी हैं—कुपोषण के शिकार आदिवासी, नक्सलियों की हिंसा झेल रहे ग्रामीण, घुमंतू और अपराधी घोषित जातियों के लोग, जमीन छीन लिए गए किसान, शहरीकरण के विस्थापित, गाँव में होने वाले यौन शोषण के खिलाफ आवाज उठाती महिलाएँ और शहरी वेश्याएँ।

दरअसल इस दुनिया की खबरें कुछ साल पहले तक हमें मिलती रहती थीं, मगर अब मीडिया में टीजी यानी कि टारगेट ऑडियंस का बोलबाला है। हमें वही दिखाना है जो हमारा दर्शक या पाठक पढ़ना चाहता है। सर्वे रिपोर्ट पर तय किए गए इस अजीब से तर्क और बाजारवाद के फेर में अखबार और टीवी चैनलों में इस दुनिया में बसने वालों के समाचार मिलने अब तकरीबन बंद ही हो गए हैं।

मगर युवा पत्रकार शिरीष खरे ने हमें यह खो-सी गई दुनिया दिखाई। किताब की हर कहानी चौंकाती है और कुछ हद तक रुलाती भी है।

फिर चाहे वो सच्ची कहानी महाराष्ट्र के मेलघाट के गाँवों की हो जहाँ कुपोषित बच्चे की माँ सपाट अंदाज में अपने बेटे की मौत पर कहती है कि वो कल मर गया, तीन महीने भी नहीं जिया या फिर छत्तीसगढ़ के दरभा के कस्बों की वो कहानी जहाँ सरकारी अफसर कहता है कि बाहर हाट-बाजार लगा है, मगर कब यहाँ गोलियाँ चल जाएँ और कितनी लाशें बिछ जाएँ, कोई नहीं जानता। राजस्थान के बायतु गाँव की वो कहानी भी हिला देती है जिसमें गाँव के बड़े लोगों के बलात्कार का शिकार होने के बाद अदालत के चक्कर काट रही युवती कहती है कि मेरी असली फोटो और नाम ही देना भाई, नहीं तो कुछ मत छापना। गाँव के जिन ताउ लोगों के सामने लाज शर्म रहती थी जब उनके सामने ही इज्जत नहीं रही तो उनसे क्या डर और शर्माना जिनको हम जानते भी नहीं। सूरत को मैं देश का सबसे सुंदर शहर मानता था वहाँ की सड़कें और फ्लाईओवर के हमेशा गुण गाता था, मगर अब सूरत जाऊँगा तो वो मीराबेन याद आएँगी जिनको महीनों से रात-दिन नींद नहीं आती। बढ़ते शहरीकरण के कारण मीराबेन सरीखी हजारों महिलाएँ बार-बार अपने घर-मोहल्लों से उजाड़ी गई हैं। बार-बार उनको नई-नई जगह बसाया गया। अब ये सरकारी गाड़ी देखकर ही डर जाती हैं। जैसे ही बस्ती में नगर निगम बिजली-पानी का चार्ज लेना बंद कर देती है, ये रहवासी समझ जाते हैं कि अब वो यहाँ कुछ दिनों के मेहमान हैं। यहाँ अल्फ्रेड जैसे लोग हैं जिन्होंने एक दिन में दो-दो हजार झोंपड़े और झुग्गियाँ उजाड़ते देखे। सड़क, मॉल, फ्लाईओवर के रास्ते में आ रहे इन झोपड़ों में रहने वालों को हटाकर बसाया जाता है, शहर से बाहर जहाँ न रोजगार होता है और न रास्ते। किताब में नर्मदा किनारे की रिपोर्ट भी चौंकाती है जहाँ बताया जाता है कि नदी किनारे के रेतीले घाट कैसे मैदान होते जा रहे हैं। चाहे वहाँ रात-दिन चल रहा अवैध रेत उत्खनन हो या फिर नदी किनारे बन रहे कारखाने और थर्मल प्लांट। बेजुबान नदी को चुनरी चादर चढ़ाकर आस्था का ढोंग करने वाले नेता ही उत्खनन और नदी किनारे के कटते पेड़ों से आँखें मूँदकर बैठे हैं। अपने आपको घुमंतू पत्रकार कहने वाले शिरीष अपने पाठक को मुंबई के कमाठीपुरा की अँधेरी बदबूदार कोठरियों में भी ले जाते हैं जहाँ रहने वाली वेश्याएँ यह कभी नहीं कहतीं कि वेश्यावृत्ति ने उनको आजादी का अहसास कराया। वक्त और परिस्थितियों की मारी इन गरीब वेश्याओं को इन कोठरियों में नरक-सी घुटन और बीमारियों के सहारे आने वाली मौत का अहसास हर वक्त होता है।

शिरीष की यह पुस्तक हमें उस दुनिया में ले जाती है जहाँ हम अब जाना नहीं चाहते। मगर शिरीष अपने इन यात्रा-वृत्तांत की मदद से हमें उन इलाकों में ले जाते हैं, वहाँ रहने वालों के दुख-दर्द से परिचित कराते हैं और सवाल उठाते हैं कि बाकी देश के लोगों की तरह इनके दिन क्यों नहीं बदले। इनके अच्छे दिन कब आएँगे और क्या ये लोग और इनके बच्चे इसी दुनिया में रहने को शापित हैं, कोई इन पर ध्यान क्यों नहीं दे रहा है? एक अच्छा पत्रकार अपनी रिपोर्ट में इन सब बातों को बता ही सकता है। सवाल के जवाब सरकार के पास होते हैं। पढ़कर लंबे समय तक याद रखने वाली यह अच्छी पुस्तक है।

बिछड़े कई बारी-बारी

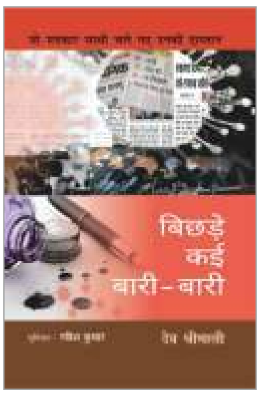

समीक्षक : **प्रमोद भार्गव**

संपादक : **देव श्रीमाली**

प्रकाशक : लोकमित्र, शाहदरा, दिल्ली।

पृष्ठ : 224

मूल्य : रु. 250/-

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी बेटी सरोज की याद में एक कविता लिखी है, 'सरोज स्मृति'। यह कविता हिंदी ही नहीं, विश्व साहित्य में श्रेष्ठ शोक-कविता मानी जाती है। भारत ही नहीं, दुनिया ने कोरोना विषाणु की तीन जानलेवा लहरों का सामना किया है। इन कालखंडों में अनेक लोग काल के गाल में समाए हैं। ये लोग इस संकटकाल में मानव सेवा में अपने प्राणों की परवाह किए बिना जुटे थे, परंतु नियति ने उन्हें भी नहीं बख्शा! अनेक चिकित्सक, पुलिस, राजस्व व सफाईकर्मी अपने पवित्र दायित्व का निर्वहन करते हुए विदा हो गए। इस मोर्चे पर एक कौम ऐसे कलमकारों की भी थी, जो मौत के परिसरों में जाकर कोरोना-आपदा से जुड़ी पल-पल की खबरें मीडिया के सभी माध्यमों को दे रहे थे जिससे महामारी के प्रति आम व खास लोग सतर्क व जागरूक बने रहे हैं। लेकिन चैतन्य रहने की चीख-चीख कर मुनादी पीटने वाले इनमें से अनेक बंधुओं को 'कोविड-19' नाम के अदृश्य यमदूतों ने हमसे हर लिया। इसे विडंबना ही कहेंगे कि जो कोरोना से बचाव के लिए प्रकाश के जुगनू बिखेरे हुए थे, उनमें से ज्यादातर की ठीक-ठाक खबर ही नहीं बनी।

गोया, जो गए, उन्हें लौटाया तो नहीं जा सकता, लेकिन शोक-संवेदना तो प्रकट की ही जा सकती है। परंतु इस कर्तव्यपालन का बीड़ा भी वही लेखक-पत्रकार उठा सकता है, जो खुद शब्द-सर्जकों के प्रति संवेदनशील हो। अतएव इस संकल्प को निर्लिप्त भाव से पूरा करने में लग गए प्रखर पत्रकार भाई देव श्रीमाली।

यह पुस्तक दिवंगत पत्रकारों के जीवन-चरित्र, कृतित्व और व्यक्तित्व पर वैसा प्रकाश नहीं डाल पाई है, जिसके वे वास्तव में हकदार थे। दरअसल इस पुस्तक के प्रकाशन का यह उद्देश्य भी नहीं था कि उनके लेखकीय मूल्यों से जुड़ी विवरणिका विस्तृत हो। यदि विस्तार में जाने की पहल की जाती तो इस पुस्तक की प्रासंगिकता ही

नहीं रह जाती? क्योंकि तब लंबा समय लगता और फिर स्मृतियाँ विस्मृत होने लग जातीं। इस संकलन का मूल अभीष्ट दिवंगतों का महज दस्तावेजीकरण करना रहा है। इस लिहाज से संपादक देव श्रीमाली ने अपनी भूमिका 'ताकि सनद रहे' में लिखा भी है, 'पत्रकारों की इन मौतों ने मुझे झकझोर दिया, क्योंकि मैं जानता हूँ, पत्रकार के परिवार का अस्तित्व उसकी साँस टूट जाने के साथ ही मिट जाने के हाल में आ जाता है। इसलिए मैंने कोरोना काल में मध्य प्रदेश के दिवंगत पत्रकारों का दस्तावेजीकरण हर हाल में करने का निर्णय ले लिया जिससे दिवंगतों की स्मृति अक्षुण्ण बनी रहे।' इस नाते देव श्रीमाली अपनी लक्ष्य-साधना में पूर्णतः सफल रहे हैं। हालाँकि इस आपदा में राजकुमार केसवानी, शिव अनुराग पटेरिया, प्रभु जोशी, प्रो. कमल दीक्षित, प्रो. प्रकाश दीक्षित, महेंद्र गगन और ए.एच. कुरैशी जैसे दिग्गज लेखक-संपादक-पत्रकार दिवंगत हुए हैं।

ऐसी विकट परिस्थिति में जो हुआ या हो पाया, वही बहुत है। इसीलिए प्रख्यात टीवी पत्रकार रवीश कुमार ने इस पुस्तक में 'ये कोरोना काल में भी मीडिया के संघर्ष का दस्तावेज है' शीर्षक से लिखी भूमिका में बेबाकी से कहा है, "2020 के काल में, हमने प्राइम टाइम में कुछ पत्रकारों की मौत की खबरों का संकलन करना शुरू किया था। परंतु हमने देखा कि दिवंगत पत्रकारों के बारे में उनके अपने अखबार में किस तरह से छापा है, तो बहुत दुख हुआ। जिस जिले के पत्रकार की मौत हुई, उस जिले के संस्करण में भी विस्तार से नहीं बताया कि उनके यहाँ 20 साल से काम कर रहे पत्रकार ने किस तरह की खबरें की थीं? किस तरह के लोगों की बात उठाई थी। सिंगल कॉलम में खबर छपी थी कि फलाने पत्रकार का निधन हो गया है।"

इसी पुस्तक की भूमिका में लेखक-पत्रकार पंकज चतुर्वेदी ने तो इन दिवंगतों के प्रति अतिरिक्त उदारता बरतते हुए इन्हें 'कोविड-कलम : शहीदों की याद में' शीर्षक से रेखांकित किया है। उनका मानना है कि "यह पुस्तक कोविड की महामारी में अपने कर्तव्य को निभाते हुए शहीद हो गए, उन 'कोविड-वॉरियर' की स्मृतियों का झरोखा है, जो सभी पत्रकारों के लिए प्रेरणास्रोत है। समाज को यह बताने का प्रयास है कि जिस अखबार को कुछ देर बाद अपनी रद्दी की टोकरी में डाल देते हैं, उसके शब्द-सृजित करने वाला इन्हें रखने के लिए अपना पसीना और खून दोनों लगाता है।" तय है, पत्रकारों ने इस विकट आपदा में जो पसीना और खून बहाया, उसे देव श्रीमाली ने अपने परिश्रम से उनके पराक्रम का दस्तावेजीकरण कर दिया। यह संग्रह इसलिए भी विलक्षण है, क्योंकि दिवंगत तो पत्रकार पूरे देश में हुए हैं, लेकिन उनका किताब के रूप में पंजीयन मध्य प्रदेश में ही हुआ है। इस लिहाज से यह संकलन अभिप्रेरणा का काम भी कर सकता है कि अन्य राज्यों में भी कोरोना से दिवंगत लेखक-पत्रकारों का दस्तावेजीकरण हो। पत्रकारिता से जुड़े कोरोना योद्धाओं को पुस्तक के रूप में दी गई यह उसी तरह की श्रद्धांजलि है, जिस तरह से

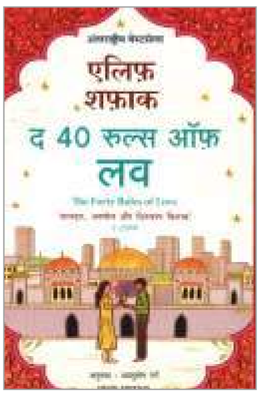

समीक्षक : **सोमदत्त शर्मा**

लेखक : **एलिफ़ शफ़ाक**

अनुवादक : **आशुतोष गर्ग**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 432

मूल्य : रु. 250/-

द 40 रूल्स ऑफ़ लव

एलिफ़ शफ़ाक तुर्की मूल की अंग्रेजी लेखिका हैं। एलिफ़ ने नौ उपन्यास लिखे हैं। 'द 40 रूल्स ऑफ़ लव' उनका नौवाँ उपन्यास है। इसका हिंदी अनुवाद आशुतोष गर्ग ने किया है। इसका अब तक 40 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उपन्यास में दो कथाएँ हैं। दोनों कथाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं।

एला की कहानी सांसारिक जीवन की अपूर्णता की कहानी है। इस अपूर्णता को पूर्णता तक ले जाती हैं। 13वीं शताब्दी के महान सूफी संत शम्स और उस समय के महान इस्लामिक विद्वान रूमी के मिलन की कहानी जो अंततः सूफी संत शम्स का शिष्य बन जाता है। उपन्यास में एलिफ़ ने इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास तो किया ही है, अतार्किक आडंबरों पर तीखे सवाल भी उठाए हैं।

पहली कहानी में, तमाम आधुनिक सुख-सुविधाओं के बावजूद अधेड़ उम्र की एला को अपने जीवन में 'प्रेम' का अभाव महसूस होता है। वह शायद नहीं समझ पाई कि एंद्रिक सुख क्षणिक होता है। अक्षुण्ण प्रेम किसी भी धर्म में आध्यात्मिकता का चरम निकष है।

शम्स तबरेज 13वीं शताब्दी के महान सूफी संत हैं। उन्हें मस्जिद, पुस्तकालय और वेश्यालय—कोई जगह अपवित्र नहीं लगती। शम्स मानता है कि खुदा सब जगह है। 'प्रेम' और 'अल्लाह' एक ही चीज़ है। उपन्यास में शम्स कहता है—

"मैंने यात्राओं के दौरान हर तरह का रास्ता तय किया है, मैंने विद्वानों से बात की है।...हर धार्मिक स्थल देखा है।...साधना की है। मैंने इन अनुभवों के आधार पर एक सूची तैयार की थी...मेरी नज़र में ये इस्लाम के सूफियों के मूल सिद्धांत हैं। ये प्रकृति के स्थायी नियम हैं। इनसे 'प्रेम' नामक संप्रदाय के 40 नियम बनते हैं जिन्हें केवल प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है।"

इसी आधार पर एलिफ़ शफ़ाक ने अपने उपन्यास का शीर्षक रखा है—द 40 रूल्स ऑफ लव। इन चालीस नियमों में पहला नियम बताते हुए शम्स कहता है—

"खुद को जानकार ही आप खुदा को जान सकते हैं।"

यह नियम भगवान बुद्ध के "अप्प दीपो भव" से अलग नहीं है। इस अर्थ में उपन्यास विभिन्न धर्मों के बीच समानता के सूत्र खोजता दीखता है। उपन्यास में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ धार्मिक आडंबर की भर्त्सना की गई है। 'डेजर्ट रोज' नाम की वेश्या का प्रसंग इसका उदाहरण है। वेश्या, रूमी का उपदेश सुनने के लिए मस्जि़द में जाती है। वहाँ उसे प्रताड़ित किया जाता है। तब शम्स पूछता है—

"तुम्हारा ध्यान इस औरत पर कैसे गया? तुम तो मस्जिद में गए थे? खुदा को छोड़कर तुम्हारा ध्यान इधर-उधर बैठे लोगों पर कैसे गया?"

एलिफ़ ने इस्लाम के अनुयायियों से चुटीले सवाल भी किए हैं। एक प्रसंग में नशेबाज सुलेमान शराबखाने में है। तभी वहाँ से गुजरते धार्मिक जुलूस में से एक आदमी कहता है—

'मुसलमान होकर शराबखाने में बैठे हो।...क्या तुम्हें पता नहीं शराब को शैतान ने बनाया है।'

तब सुलेमान प्रश्न कहता है—"अगर यह इतनी बुरी चीज़ है तो फिर स्वर्ग में शराब क्यों दी जाती है?"

एलिफ़ का उपन्यास प्रकाशित हुआ तब तक दुनिया इस्लामिक कट्टरपंथ का सामना करने लगी थी। धर्मग्रंथों की मनमर्जी की व्याख्या से इस्लाम का स्वरूप भ्रष्ट हो रहा है। 13वीं सदी में भी ऐसा होता था। 'कट्टरपंथी' शीर्षक अध्याय में एक पात्र ऐसे धर्मगुरुओं पर कटाक्ष करता है—"वे ऐसा हर काम करते हैं जिससे उन्हें खुदा का स्पष्ट संदेश न पढ़ना पड़े।"

ऐसी टिप्पणियाँ एलिफ़ शफ़ाक के मन की टिप्पणियाँ हैं। उपन्यास पढ़कर लगता है कि वे सांसारिक जीवन के अधूरेपन, मनुष्य की चिरंतन खोज और विभिन्न धर्मों के आध्यात्मिक चिंतन में एकरूपता दिखाते हुए अपने समय की समस्याओं का समाधान देने की भी ईमानदार कोशिश कर रही हैं।

nbt.india
एक: सूते सकलम्

आगामी अंक के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **जुलाई-अगस्त, 2022** का अंक **'आजादी का अमृत महोत्सव'** विशेषांक होगा, जिसमें आजादी के संघर्ष में बलिदान होने वाले अल्प ज्ञात या गुमनाम क्रांतिकारियों, संघर्ष से जुड़ी कम ज्ञात घटनाओं व स्थानों, संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि पर सामग्री होगी।

इस अंक के लिए सामग्री **31 मार्च, 2022** तक भेज सकते हैं।

लेखकों हेतु निर्देश : 1. सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो। 2. रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए। 3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें। 4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें। 5. किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी। 6. पत्रिका के संपादक के ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। रचना कृति, यूनिकोड / शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

नोट : पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।

संपादक (पुस्तक संस्कृति), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com • दूरभाष : 011-26707758, 26707876

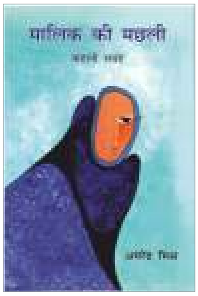

मालिक की मछली

अमरेंद्र मिश्र

इस कहानी संग्रह में कुल 12 कहानियाँ हैं। इन कहानियों में यथार्थपरक जीवन की सहज अभिव्यक्ति है। इस संग्रह की कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं—'घने कोहरे के बीच', 'चंडिका गली', 'नहीं, यह अंत नहीं', 'मामूली चिट्ठियाँ', 'लूना', 'मालिक की मछली'। इन सभी कहानियों की बुनावट में एक जीता-जागता परिवेश है।

लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 134; रु. 250.00

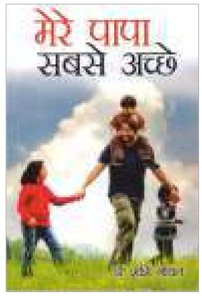

मेरे पापा सबसे अच्छे

डॉ. शशि गोयल

प्रस्तुत कहानी संग्रह में कुल 21 कहानियाँ हैं। कहानियों को पढ़कर लगता है कि इनमें वर्णित कथानक स्वयं के जीवन का हिस्सा है। प्रत्येक कहानी में बिखरे जीवन को शब्दों में समेटने की कोशिश है। ये कहानियाँ हैं—'मेरे पापा सबसे अच्छे', 'कुछ भी कहो', 'माँ की गंध', 'एक आरंभ का अंत', 'अनचाहे', 'कोई नहीं', 'आनंदा'।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 128; रु. 150.00

पर्यावरण : मौत या जिंदगी 'निबंध'

उमेश कुंवर कवि

इस निबंध संग्रह में पर्यावरण को स्वच्छ रखने पर आधारित लेख हैं। इन लेखों में जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण के कारकों और उनके निदान पर विभिन्न तथ्यों को बहुत ही स्पष्ट तौर पर व्यक्त किया गया है। साथ ही, मनुष्य को पर्यावरण के प्रति जागरूक रहने की सलाह भी दी गई है।

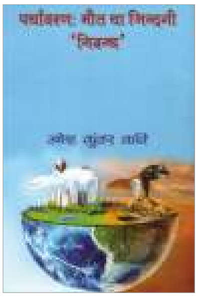

रोहिनी नंदन, कोलकाता।

पृ.64; रु.200.00

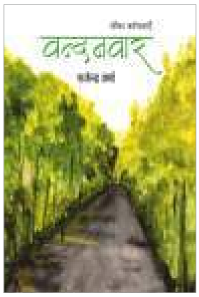

वन्दनवार

राजेंद्र वर्मा

इस काव्य संग्रह में न केवल समाज के अनेक पक्ष जीवंत हुए हैं, अंतःप्रकृति और बाह्य प्रकृति के भी अनेक आयाम उद्घाटित हुए हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में प्रकृति का चित्रण किया गया है। संग्रह की रचनाओं के चार प्रमुख वर्ण्य विषय हैं—प्रकृति-पर्यावरण, समाज, सत्ता व्यवस्था और आत्म संवाद।

बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृ. 88; रु. 120.00

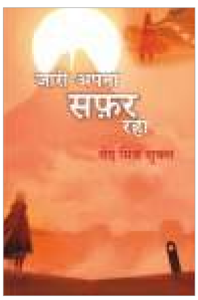

जारी अपना सफर रहा

वेद मित्र शुक्ल

इस संग्रह में कुल 125 हिंदी गजलें हैं। इन गजलों में सामाजिक कुरूपताओं का पर्दाफाश कर मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। ये गजलें जीवन की सहजता और पारस्परिक प्रेम भाव को सर्वोपरि रखते हुए वर्तमान समय के कृत्रिम बड़प्पन पर गहरी चोट करती हैं।

अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली।

पृ. 134; रु. 210.00

हिंदी के प्रयोग में मानसिक अवरोध

डॉ. ईश्वर सिंह

इस पुस्तक में बहुत ही स्पष्ट तौर पर यह बताया गया है कि कैसे हिंदी का स्तरीय ज्ञान होते हुए भी सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी में कार्य करने में बाधा आती है। प्रत्येक अध्याय में लेखक ने उस मानसिक दुर्बलता का वर्णन किया है जो जनमानस में अंग्रेजी को श्रेष्ठ और हिंदी को हीन साबित करती है।

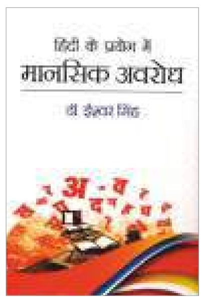

ए.आर. पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली।

पृ. 160; रु. 325.00

दुर्गावती : गढ़ा की पराक्रमी रानी

राजगोपाल सिंह वर्मा

प्रस्तुत पुस्तक में रानी दुर्गावती के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पहलुओं का कुल 34 अध्यायों में वर्णन किया गया है। पुस्तक को पढ़ने मात्र से इस वीरांगना की छवि रोमांच उत्पन्न करती है, जिन्होंने चुनौतीपूर्ण समय में युद्ध के मैदान में घोड़े पर सवार होकर ढाल और तलवार से दुश्मन की सेना को ललकारा था।

शतरंग प्रकाशन, लखनऊ।

पृ. 230; रु. 650.00

बात अभी बाकी है

दिलीप सिंह 'दीपक'

इस संग्रह की गजलें अंतर्मन से प्रस्फुटित संवादों को शिल्प एवं संवेदना का खूबसूरत पुट देते हुए सृजित की गई हैं। जिंदगी के हर पहलू को उजागर करती पंक्तियाँ मन को सुकून तो देती ही हैं, साथ ही समस्याओं का हल सुझाती खुशनुमा वातावरण को जन्म देती हैं।

शब्दांकुर प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 112; रु. 200.00

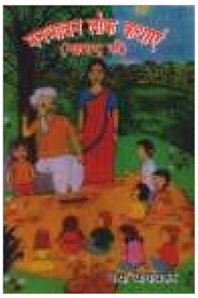

मनभावन लोक कथाएँ (महाराष्ट्र की)

पद्मा चौगांवकर

इस संग्रह में कुल 12 लोक कथाएँ हैं जो मानवीय गुणों के विविध स्वरूपों को व्यक्त करती हैं। प्रेम, श्रद्धा, कर्तव्यनिष्ठा, समर्पण एवं त्याग के महत्व को इन मनभावन लोक कथाओं में बहुत ही खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये लोक कथाएँ कुछ-न-कुछ सीख देती हैं।

निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।

पृ. 64; रु. 70.00

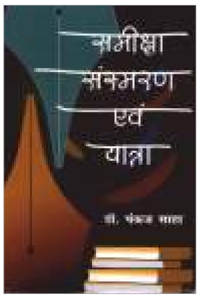

समीक्षा संस्मरण एवं यात्रा

डॉ. पंकज साहा

लेखक की इस पुस्तक में विविध विधाओं का समावेश है। इसमें लेखक द्वारा लिखित कुछ समीक्षात्मक लेख, कुछ संस्मरणात्मक लेख, 'विश्व गगन का प्यारा तारा : मॉरीशस' नाम से एक यात्रा संस्मरण और महान स्वतंत्रता सेनानी बारींद्र कुमार घोष की जीवनी संकलित है। लेखक के ये 16 आलेख उनके व्यावहारिक जीवन के लंबे अनुभव को बयान करते हैं।

अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 120; रु. 305.00

बाल भाषा-व्याकरण

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

यह हिंदी व्याकरण की पुस्तक है, जिसमें आरंभिक व्याकरण का ज्ञान बिलकुल अलग और रोचक तरीके से दिया गया है। साथ ही, लेखन-कौशल में बातचीत, कहानी, पत्र, निबंध आदि विधाओं को विशेष महत्व दिया गया है। पुस्तक में बच्चों को हिंदी-लेखन में अशुद्धियों को सरल और रोचक तरीके से दूर करना भी सिखाया गया है।

अयन प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 100; रु. 100.00

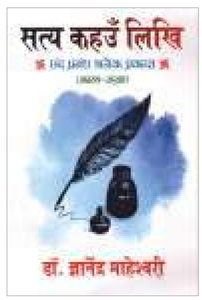

सत्य कहउँ

डॉ. ज्ञानेंद्र माहेश्वरी

प्रस्तुत पुस्तक में 60 कविताएँ छंद के रूप में समाहित हैं, जो प्रेम, दुख, जीवन-मरण, विरह, वेदना आदि से रू-ब-रू कराती हैं। सभी कविताएँ सामान्य पाठक को सकारात्मक-सात्विक सोच की परिधि में ले जाती हैं।

मधु प्रकाशन, बदायूँ, उत्तर प्रदेश।

पृ. 48; रु. 125.00

उभरती लेखन प्रतिभाओं का एक मंच : प्रधानमंत्री युवा योजना

भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा प्रकाशक देश है। इसे युवा लेखन प्रतिभाओं का देश कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन प्रतिभाओं को एक मंच चाहिए जो उनके हुनर को निखार दे, उनकी कलम को धार और नई दिशा दे। कुछ ऐसा ही नई पीढ़ी के लेखकों को खोजने, पहचानने और बढ़ावा देने के लिए भारत के माननीय प्रधानमंत्री जी की परिकल्पना के अंतर्गत शुरू की गई 'प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप योजना' ने हासिल किया है।

इस योजना के अंतर्गत अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से 30 वर्ष से कम आयु के युवा लेखकों के लिए छात्रवृत्ति-सह-परामर्श योजना हेतु 75 लेखकों का चयन किया जाना था। इसका आयोजन MyGov और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के माध्यम से 01 जून—31 जुलाई, 2021 तक किया गया।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा आजादी का अमृत महोत्सव कार्यक्रमों के अंतर्गत 'भारत के राष्ट्रीय आंदोलन' विषय पर 22 आधिकारिक भाषाओं और अंग्रेजी में पुस्तक प्रस्तावों को आमंत्रित करते हुए अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से शुरू इस योजना को अभूतपूर्व प्रतिक्रिया मिली, जिसमें कार्यान्वयन एजेंसी की भूमिका राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने निभाई। इन 23 भाषाओं में कथा और कथेतर साहित्य—दोनों श्रेणियों में भारत के राष्ट्रीय आंदोलन, गुमनाम योद्धा, अज्ञात स्थानों की भूमिका, महिला नेताओं आदि विषयों पर 16,000 से भी अधिक पुस्तक प्रस्ताव प्राप्त हुए। इनमें कुछ भारतीय प्रवासी समुदाय के प्रस्ताव भी शामिल थे। सभी पुस्तक प्रस्तावों को विशेषज्ञों के पैनल द्वारा पढ़ा गया और त्रिस्तरीय जाँच के माध्यम से परखा गया। चयनित 75 लेखकों की सूची बहुत ही स्वाभाविक तौर पर लैंगिक समानता हासिल करने में सक्षम रही। इस सूची में से 38 पुरुष और 37 महिलाएँ हैं। इसमें से दो लेखक 15 वर्ष से भी कम आयु के हैं।

इन चयनित लेखकों को छह महीने की मेंटरशिप दी जाएगी, जिसमें उन्हें प्रख्यात लेखकों और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की संपादकीय टीम के मार्गदर्शन में अनुसंधान और संपादकीय सहायता प्रदान की जाएगी, जिससे उनके पुस्तक प्रस्तावों को पूर्ण पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जा सके। आजादी का अमृत महोत्सव पहल के हिस्से के रूप में न्यास उनकी प्रकाशित पुस्तकों का बाद में अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद करेगा। मेंटरशिप के दौरान, चयनित लेखकों को छह महीने की अवधि के लिए प्रति माह 50,000 रुपये की छात्रवृत्ति मिलेगी। इसके अलावा, लेखकों को उनकी पुस्तकों के सफल प्रकाशन पर 10 प्रतिशत की रॉयल्टी देय होगी।

साहित्य कैसे एक उपकरण बन सकता है, देश को सांस्कृतिक और साहित्यिक समझ और एकीकरण के सूत्र में बाँध सकता है, इसका सबसे अच्छा उदाहरण तब मिलेगा, जब विभिन्न भाषायी पृष्ठभूमि और परंपराओं के युवा लेखक इस बारे में खोजने, सीखने और लिखने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न ज्ञात और अज्ञात तथ्यों को एकत्र कर अपनी पुस्तकों के माध्यम से एक साथ आगे आएँगे।

वास्तव में प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप योजना एक महत्वपूर्ण मंच है, जो न केवल युवा लेखकों को बढ़ावा दे रहा है, बल्कि यह समग्र रूप से देश के संकटमय अनुभव और समस्याओं के दस्तावेजीकरण और सीखने के विचार को बढ़ावा दे रहा है। इस तरह की खोज करने वाले अब युवा लेखक बनने जा रहे हैं। इस महत्वाकांक्षी योजना के प्रभाव दूरगामी हो सकते हैं।

राज्य	चयनित लेखक का नाम	भाषा
असम	प्रियम डी ज्योत्सना	असमिया
	बुधिदीप्ता दिहिंगिया	असमिया
	अनिला स्वरगियारी	बोडो
	नम्रता हाजरिका	अंग्रेजी
आंध्र प्रदेश	देवराकोंडा प्रवीण कुमार	तेलुगू
बिहार	ईशा	हिंदी
	उत्कर्ष आनंद	हिंदी
	कृष्णेंदु मोहन ठाकुर	मैथिली
	निसार अहमद	उर्दू
	अंजार अकील	उर्दू
	साफिया अख्तर सुभानी	उर्दू

राज्य	चयनित लेखक का नाम	भाषा
छत्तीसगढ़	इंदु वर्मा	हिंदी
दिल्ली	आरुषि माहेश्वरी	अंग्रेजी
	आशिषा चक्रवर्ती	अंग्रेजी
	प्राप्ति शर्मा	अंग्रेजी
	सुदर्शन झा	अंग्रेजी
	सुशांत भारती	हिंदी
गुजरात	प्रकाश कुमार गनपतभाई सुथार	गुजराती
	शुभम प्रकाशभाई अंबानी	गुजराती
	पटेल स्वेताबेन दशरथभाई	गुजराती
हरियाणा	सरताज सिंह	पंजाबी
जम्मू एवं कश्मीर	भारती देवी	डोगरी
	इक्षु शर्मा	अंग्रेजी
	ताहिर अहमद लोने	कश्मीरी
झारखंड	अक्षत देव	अंग्रेजी
	अटूट संतोष	हिंदी
	ज्ञान सिंधु	संस्कृत
कर्नाटक	आलिया कोनडम्मा	अंग्रेजी
	जी. आरती	अंग्रेजी
	वैष्णवी गोर्नाले	अंग्रेजी
	निष्ठा छाबड़ा	अंग्रेजी
	जयसिम्हा के. आर.	कन्नड़
	तेजस एच. बडाला	कन्नड़
केरल	अलीना अनाबेल्ली ए.	अंग्रेजी
	मिथुन मुरली	अंग्रेजी
	एम.एस. मीनाक्षी	मलयालम
	अनुरंज मनोहर	मलयालम
	अनुष्का टी.एस.	मलयालम
	जे.एस. अनंता कृष्णम	मलयालम
महाराष्ट्र	आदित्य सूर्यवंशी	अंग्रेजी
	पटवर्धन ध्रुव सचिन	मराठी
	श्रेयश राजेश कोल्हेकर	मराठी
	प्रवीण प्रहलाद नयासे	मराठी
	कीर्ति गंगाधर फाटे	मराठी
	नाओमी दशरथ सातम	अंग्रेजी
मध्य प्रदेश	कपिल मेवाड़ा	हिंदी
मणिपुर	चनम्थाबम रोनिका देवी	अंग्रेजी
	प्रद्युम मोइरंगथम	मणिपुरी

राज्य	चयनित लेखक का नाम	भाषा
ओडिशा	अनिन्द्य नारायण सिंह	ओडिया
	दिलेश्वर राणा	ओडिया
	ओम प्रियदर्शी छोतारे	ओडिया
पंजाब	जसप्रीत कौर	पंजाबी
	हरलीन	पंजाबी
राजस्थान	दिनेश मंडोरा	हिंदी
	माधव शर्मा	हिंदी
तमिलनाडु	रानी उन्नामलाई	अंग्रेजी
	जे.यू. सुघन्ना	तमिल
	सरवानन जी.	तमिल
	के. गीता	तमिल
तेलंगाना	बोनागिरि सुकन्या	तेलुगू
	कम्मारी ज्ञानेश्वर	तेलुगू
उत्तर प्रदेश	कायनात आरिफ	अंग्रेजी
	धर्मराज गुप्ता	हिंदी
	मदाल्शा मणि त्रिपाठी	हिंदी
	लक्ष्य टेकचंदानी	सिंधी
	नेहा	उर्दू
उत्तराखंड	ऐश्वर्या मेहता	अंग्रेजी
	अनूप कृष्वाण	हिंदी
	रितिका बिष्ट	हिंदी
पश्चिम बंगाल	सुष्मिता हैदर	बांग्ला
	मौली रॉय	बांग्ला
	गौरी भुइयाँ	अंग्रेजी
	सौहार्द दे	अंग्रेजी
	मोनिका राना	नेपाली
	रंकिनी हँसदा	संताली

हिंदी भाषा में चयनित लेखक

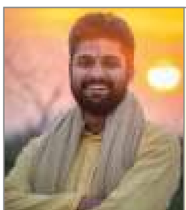

सुशांत भारती

विषय : भारतीय सामुद्रिक संग्राम

सुशांत भारती (13 जुलाई, 1993) संरक्षण स्थापति एवं शोधकर्ता के रूप में दिल्ली में ही कार्यरत हैं। उन्होंने वास्तुकला में स्नातक किया है। मंदिर स्थापत्य, भारतीय मूर्तिशास्त्र, ब्रज की सांस्कृतिक परंपरा आदि विषयों में उनकी विशेष रुचि है। वर्तमान में ब्रजस्थ मंदिर स्थापत्य के शोध एवं प्रलेखन कार्य में संलग्न हैं।

दिनेश मंडोरा

विषय : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में भारतीय वैज्ञानिकों का योगदान

दिनेश मंडोरा (01 दिसंबर, 1995, अलवर, राजस्थान) भौतिक विज्ञान स्नातकोत्तर अंतिम वर्ष के छात्र हैं और दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर और अभियांत्रिकी में भी स्नातक हैं। क्वोरा प्रश्नोत्तर मंच पर विज्ञान संबंधित प्रश्नों का उत्तर देना, विज्ञान के प्रति रोचक लेखन उन्हें पसंद है।

मदालसा मणि त्रिपाठी

विषय : भारत के स्वतंत्रता संग्राम में मणिपुर की भूमिका

मदालसा मणि त्रिपाठी (01 जुलाई, 1992, लखनऊ, उत्तर प्रदेश) ने स्नातक कलकत्ता विश्वविद्यालय और स्नातकोत्तर प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कलकत्ता से हिंदी विषय में किया है। साथ ही, एम.फिल. हिंदी विषय से किया है, जो पूर्वोत्तर के राज्य मणिपुर पर आधारित था, जिससे उनमें मणिपुर के प्रति जागरूकता बढ़ी। वर्तमान में वे प्रधान महालेखाकार के कार्यालय (लेखापरीक्षा-II), लखनऊ में कनिष्ठ अनुवादक के पद पर कार्यरत हैं और राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश से पी-एच.डी. भी कर रही हैं।

धर्मराज गुप्ता

शीर्षक : याद करूँ तो...

धर्मराज गुप्ता (02 जनवरी, 2001, चोरकैंड, बलिया, उत्तर प्रदेश) ने स्नातक (हिंदी) जिला मुख्यालय से किया और वर्तमान में वे बीएड द्वितीय वर्ष के छात्र हैं। उन्हें हिंदी साहित्य, ऐतिहासिक घटना आदि के अध्ययन में रुचि है। वे समसामयिक घटनाओं पर लेख तथा सामाजिक जागरूकता के लिए कविताएँ लिखते हैं।

रीतिका बिष्ट

शीर्षक : बिशनी देवी साह– गाथा एक वीरांगना की

रीतिका बिष्ट (02 जनवरी, 1998, हल्द्वानी, उत्तराखंड) राजकीय मेडिकल कॉलेज, हल्द्वानी में एम.बी.बी.एस. अंतिम वर्ष की छात्रा हैं। उनकी कविताओं, कहानियों एवं सामाजिक घटनाओं के लेखन पर रुचि रही है। उन्होंने इस तरह की कई प्रतियोगिताओं में उत्तराखंड का राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व किया है।

इंदु वर्मा

विषय : सोना खान के सपूत शहीद वीर नारायण सिंह

इंदु वर्मा (12 दिसंबर, 1997, बालौदाबाजार, छत्तीसगढ़) ने इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की है। वर्तमान समय में वे गवर्नमेंट पॉलीटेक्निक कॉलेज में अंशकालिक शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। उन्हें मातृभाषा में कविताएँ लिखना पसंद है।

ईशा

विषय : देशानुरागी : बीबी कौर

ईशा (13 अप्रैल, 2002, मोतिहारी, बिहार) मगध महिला कॉलेज (पटना विश्वविद्यालय) में स्नातक की तृतीय वर्ष की छात्रा हैं। नैसर्गिक लेखन में उनकी रुचि है। लॉकडाउन के दौरान उन्होंने अपने हुनर को पहचानते हुए अपने लेखन को सही दिशा दी। वे साहित्य लेखन सीखने-सिखाने वाली संस्थाओं से जुड़कर अपनी लेखनी को प्रखर बना रही हैं।

कपिल मेवाड़ा

शीर्षक : कुंवर चैन सिंह– भारत के प्रथम स्वतंत्रता महानायक

कपिल मेवाड़ा (10 जुलाई, 1993, चितोड़िया हेमा, सीहोर, मध्य प्रदेश) ने जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर से एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग में बी.टेक. की डिग्री प्राप्त की है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार में कृषि विभाग में कार्यरत हैं। उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं—कलियुग रामायण और ढाई आखर इश्क का।

माधव शर्मा

विषय : मानगढ़ धाम हत्याकांड

माधव शर्मा (30 दिसंबर, 1999, घोड़ी तेजपुर, राजस्थान) ने स्नातक बाँसवाड़ा से ही किया है और अभी डिप्लोमा ऑफ फार्मेसी की पढ़ाई कर रहे हैं। बचपन से ही क्रांतिकारियों की कहानियाँ पढ़ और सुनकर अपनी लेखनी इस ओर मोड़ी।

अटूट संतोष

विषय : ससन

अटूट संतोष (03 जुलाई, 2000, राँची, झारखंड) ने संेट जेवियर कॉलेज से अंग्रेजी में ऑनर्स किया है। उन्हें कहानी-कविता पढ़ना, सुनना व लिखना पसंद है और पेंटिंग्स में भी खास रुचि है। अब तक कुछ कविताएँ झारखंड सरकार के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग की पत्रिका 'आदिवासी' में छपी हैं।

अनूप कृष्वाण

विषय : त्रिदेवी

अनूप कृष्वाण (09 मई, 2004, पौड़ी गढ़वाल) जवाहर नवोदय विद्यालय, देहरादून में कक्षा 12वीं के छात्र हैं। उन्हें बचपन से ही हिंदी भाषा में कविताएँ एवं निबंध लिखना पसंद है। उन्होंने इससे जुड़ी कई प्रतियोगिताएँ भी जीती हैं।

उत्कर्ष आनंद

शीर्षक : गांधी कुटीर में भगत सिंह वाया रामविनोद सिंह

उत्कर्ष आनंद (23 जनवरी, 1997, पटना, बिहार) भौतिकी विज्ञान के छात्र हैं, किंतु उन्हें साहित्य से विशेष लगाव रहा है, खासकर गुमनाम साहित्यकारों के बारे जानकारी प्राप्त करने में विशेष रुचि है।

लखनऊ काकोरी शहीद मंदिर में मुख्यमंत्री का दौरा

'आजादी के अमृत महोत्सव' के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रदर्शनियों की एक शृंखला आयोजित की गई है। इस दौरान काकोरी शहीद मंदिर, लखनऊ में आयोजित प्रदर्शनी में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने न्यास द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी का दौरा किया। उन्होंने न्यास के कार्यों की सराहना की।

साहित्य महोत्सव 'अभिव्यक्ति' में न्यास

आर्मी वाइव्स वेलफेयर एसोसिएशन द्वारा 17-19 दिसंबर, 2021 को आयोजित त्रिदिवसीय साहित्य महोत्सव 'अभिव्यक्ति' आयोजित किया गया। महिला एवं बाल विकास मंत्री श्रीमती स्मृति जुबिन ईरानी ने इस कार्यक्रम में भाग लिया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने पुस्तकें भेंट करते हुए उनका औपचारिक स्वागत किया।

शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश में आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का स्टॉल

बांग्ला सलाहकार पैनल में न्यास

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की बांग्ला सलाहकार पैनल बैठक 21 जनवरी, 2022 को राष्ट्रीय पुस्तकालय, कोलकाता में आयोजित की गई। बैठक के बाद, न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक और डॉ. शिव प्रसाद सेनापति,

पीएलआईओ ने राष्ट्रीय पुस्तकालय की दुर्लभ पुस्तकों का अवलोकन किया। श्री मलिक ने दो बांग्ला युवा लेखकों—सुश्री सुस्मिता हलदर और सुश्री मौली रॉय से भी मुलाकात की और उन्हें किताबें भेंट कीं।

साइबर सुरक्षा पर कार्यशाला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत मुख्यालय में 'साइबर सुरक्षा और इसके महत्व' पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस दौरान न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि साइबर तकनीक ने आपको सशक्त किया है, वहीं उसने आपकी सुरक्षा को भी खतरे में डाल दिया है। आने वाले समय में युद्ध साइबर रूप से लड़े जाएँगे। हमें अपने आपको इस जाल में फँसने से बचाना है। कार्यशाला में 'साइबर पीस फाउंडेशन' के संस्थापक एवं अध्यक्ष श्री विनीत कुमार ने कहा कि आज साइबर युद्ध की संभावना बन रही है, इसलिए हमें साइबर रूप से सुदृढ़ होने की आवश्यकता है। उन्होंने विभिन्न साइबर खतरों, जोखिमों को कैसे कम किया जाए और विभिन्न हैकिंग तरीकों को रोकने के बारे में कर्मचारियों को जागरूक किया जाए।

राष्ट्रीय युवा दिवस पर लेखन प्रतिभाओं को संबोधन

"विवेकानंद के जीवन से लोगों ने प्रेरणा ली। उन्होंने अल्पायु में ही दुनिया को बहुत कुछ दिया। विश्व नई दृष्टि से भारत को देखने लगा। रवींद्र नाथ टैगोर ने कहा था कि भारत को समझने के लिए विवेकानंद को समझना पड़ेगा। उनका जीवन श्रेष्ठता के लिए था।" उक्त उद्गार राष्ट्रीय युवा दिवस 2022 के अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष सपनों का भारत बनाने के लिए युवाओं को देशहित में आगे आने का आह्वान किया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि प्रसिद्ध इतिहासकार और लेखक डॉ. विक्रम संपथ ने कहा कि विवेकानंद की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। किसी भी देश का युवा देश को बनाता है। शब्दों और विचारों की शक्ति

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने व्यक्त किए। वे 12 जनवरी को प्रधानमंत्री युवा मेंटरशिप योजना के अंतर्गत चुने गए युवा लेखन प्रतिभाओं को रचनात्मक कार्य के लिए वर्चुअल माध्यम से संबोधित कर रहे थे। उन्होंने विवेकानंद के आपको सफल बनाते हैं। युवाओं का इस मंच से जुड़ना शुरुआत है। उन्हें क्या लिखना है, क्या संपादित करना है और क्या प्रकाशित करना है, उसका प्रशिक्षण देकर उन्हें तराशा जाएगा।

पीलीभीत बाँसुरी उत्सव में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और पीलीभीत जिला प्रशासन के संयुक्त तत्वावधान में 'बाँसुरी उत्सव' में साहित्यिक आयोजन किए गए। इस संदर्भ में 18 दिसंबर, 2021 को प्रख्यात इतिहासविद् श्री सुधीर विद्यार्थी ने 1857 क्रांति, खिलाफत आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन और गांधी सत्याग्रह में क्रांतिकारियों के योगदान पर चर्चा की। साथ ही, 1921 के सहयोग में जेल गए चंडी प्रसाद हृदयेश और 1942 के आंदोलन में शहीद हुए आयुर्वेदिक के छात्र दामोदर दास को याद किया। उन्होंने रोहड़िया में नमक सत्याग्रह में महिलाओं की भूमिका के साथ-साथ अन्य अवसरों पर पीलीभीत की भूमिका पर भी प्रकाश डाला। 19 दिसंबर, 2021 को श्रीमती कुसुमलता सिंह और श्रीमती सीमा सक्सेना ने बच्चों को कहानी सुनाई और उसके बाद इस बात पर विमर्श किया कि कहानी कैसे लिखी जाए।

कार्यशाला में आए बच्चों ने अपने हुनर को पंख देते हुए लगभग 30 कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ पीलीभीत शहर और बाँसुरी उत्सव से संबंधित विषयों पर थीं।

कार्यक्रम का संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के हिंदी भाषा के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी ने किया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के कार्यालय में गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित ध्वजारोहण कार्यक्रम

एन्वॉयरन्मेंटल रिनेसंस पुस्तक विमोचित

"पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं से दुनिया के सभी देश प्रभावित हैं। औद्योगिक दृष्टि से संपन्न देश ही इस समस्या को लेकर सबसे अधिक चिंतित हैं और वे लगातार विकासशील देशों पर दवाब डालने का प्रयास करते रहते हैं।" ये उद्‌गार राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'एन्वॉयरन्मेंटल रिनेसंस' के विमोचन के दौरान न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने व्यक्त किए। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति अरुण कुमार मिश्रा ने कहा कि बढ़ते उपभोक्तावाद ने पूरी दुनिया का पारिस्थितिकी संतुलन बिगाड़ दिया है, जिससे हमारे जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। यदि समय रहते हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो पृथ्वी को मंगल ग्रह बनने में अधिक समय नहीं लगेगा। इस अवसर पर राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान के कुलपति श्री महेश चन्द्र पंत, पुस्तक के लेखक श्री निरंजन देव भारद्वाज आदि उपस्थित थे। कार्यक्रम के अंत में न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

पाठकीय प्रतिक्रिया

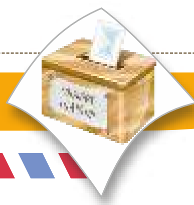

लोकप्रिय द्वैमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी-फरवरी, 2022 का अंक मिला, जो राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की प्रसिद्धि का दर्पण बन गया है। प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा का संपादकीय विचारोत्तेजक है।

इस अंक की धरोहर रचना 'परिमाण रहस्य' तो सचमुच बेजोड़ है, जो बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की प्रतिभा का निदर्शन भी कराती है। डॉ. दया शंकर त्रिपाठी का लेख 'कामायनी महाकाव्य में जलवायु परिवर्तन' भी नई दृष्टि देता है। देवेंद्र मेवाड़ी का आलेख 'क्या ब्रह्मांड में हम अकेले हैं?' तो विज्ञान लेखन की बढ़ती लोकप्रियता का प्रमाण कहा जा सकता है। विज्ञान कथा 'धर्मपुत्र' ने तो मुझे सोचने को बाध्य कर दिया है कि क्या हम अब विज्ञान कथा के दौर में पहुँच रहे हैं। यह कथा बहुत सुंदर है, अरविंद मिश्र को बधाइयाँ।

यह अंक संग्रहणीय बन गया है, जिसके लिए मैं आपका हृदय से अभिनंदन करता हूँ।

–**डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**, रुड़की

'पुस्तक संस्कृति' का जनवरी-फरवरी, 2022 अंक प्राप्त हुआ। प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा तथा संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी का बहुत-बहुत धन्यवाद!

पत्रिका में सबसे अधिक प्रभावित करने वाला प्रधान संपादक का संपादकीय है जो लोगों के मन में बहुत सारे प्रश्नों को जन्म देता है। वर्तमान समय में हिंदी को शोध की भाषा बनाना अति आवश्यक है। चाहे चिकित्सा हो या प्रौद्योगिकी, यदि शोधकर्ता चाहें तो वे अपना कार्य हिंदी में कर सकते हैं। अंग्रेजी के प्रति मोह छोड़कर हिंदी में कार्य करना प्राथमिकता होनी चाहिए। हिंदी में अधिक-से-अधिक शोधपत्र प्रकाशित किए जाने चाहिए। पत्रिका में प्रकाशित आलेख—महासागर एवं जलवायु परिवर्तन, मृदा संरक्षण : दशा और दिशा, भारत छोड़ो आंदोलन और गाजीपुर, 'हरियाली गुरु' का हरित अभियान ज्ञानवर्द्धक हैं। सभी लेखकों व संपादकीय टीम को साधुवाद!

–**डॉ. मंजू देवी**, वाराणसी

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : ________ शहर ________ राज्य ________ पिन कोड ________

फोन : ________ ई-मेल : ________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) ________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) ________ ड्राफ्ट संख्या ________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी ________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

कहानी चील की

सुकन्या दत्ता

अनुवाद : **धीरेंद्र प्रताप सिंह**

यह पुस्तक बच्चों के लिए बहुत ही रोचक जानकारी देती है। उन्हें चिड़ियों, पेड़ों और आस-पास के वातावरण से परिचित कराती है। पुस्तक में चील के जोड़े द्वारा प्रत्येक स्तर पर की गई गतिविधियों पर आधारित टिप्पणी युवा पीढ़ी को जैवविविधता की देखभाल और उसके प्रति सचेत रहने के लिए भी प्रेरित करती है।

पृ. 106; रु. 180.00

काति म्हीने री चानणिए

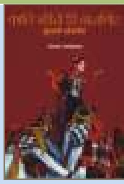

कुल्लवी लोकगीत

सरला चम्बयाल

यह पुस्तक कुल्लवी लोकगीतों का संग्रह है। इस संग्रह में पारंपरिक एवं स्वरचित लोकगीत हैं जिनमें ऋतुओं, तीज-त्योहारों, अशिक्षा, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या तथा जातीय भेदभाव आदि कुप्रथाओं पर केंद्रित लोकगीत हैं। पुस्तक में जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, वह विशुद्ध रूप से ग्रामीण एवं उनकी अपनी मातृभाषा में हैं। लेखिका द्वारा प्रत्येक गीत का भावार्थ भी साथ में दिया गया है।

पृ. 114; रु. 170.00

बंदा सिंह बहादुर

एस.एस. छीना

अनुवाद : **सुभाष नीरव**

इस पुस्तक में बाबा बंदा सिंह की जीवन-कथा रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है। पुस्तक में कुल 17 शीर्षकों के अंतर्गत जीवन-कथा का वर्णन किया गया है। उन्होंने मुगल साम्राज्य को चुनौती देते हुए गुलाम प्रजा को आजादी का एहसास कराया। यह पुस्तक पाठकों के लिए प्रेरणास्रोत होगी।

पृ. 72; रु. 115.00

अम्मू

समुद्रविज्ञानी

सचिन्द्रन करडका

अनुवाद : **पंकज चतुर्वेदी**

यह पुस्तक छह से आठ वर्ष के बच्चों के लिए चित्रकथा है। अम्मू को उसके पिताजी उसके जन्मदिन पर एक सुनहरी मछली देते हैं। मछली के अनुरोध पर वह उसकी पीठ पर बैठकर समुद्र में जाती है, जहाँ वह उसे समुद्र के अंदर की सैर कराती है। वास्तव में वह सपना देख रही थी।

पृ. 28; रु. 60.00

हिमनद

मानव जीवन का आधार

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

इस पुस्तक में कुल छह अध्यायों के अंतर्गत हिमालय के विभिन्न आयामों को रेखांकित किया गया है। लेखक का कहना है कि प्रकृति का शोषण विकृति लाता है, अतः प्रकृति से समन्वय रखना ही उचित है, तभी हमारा संरक्षण संवर्धन हो सकेगा। लेखक ने आखिरी अध्याय में हिमनदों की क्षति को रोकने के उपायों पर भी प्रकाश डाला है।

पृ. 140; रु. 280.00

लोकराज के लोकनायक

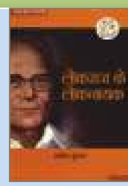

राकेश कुमार

प्रस्तुत पुस्तक में कुल 29 अध्यायों के अंतर्गत लोकनायक जयप्रकाश नारायण के राजनीतिक जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक शीर्षक लोकनायक के जीवन से जुड़े रोचक प्रसंगों पर आधारित है। वे पद व सत्ता की लोलुपता से दूर सामाजिक और राजनीतिक आयामों में सकारात्मक परिवर्तन के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे।

पृ. 224; रु. 280.00

नानाजी देशमुख :

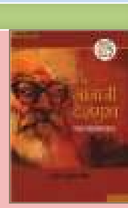

एक महामानव

मनोज कुमार मिश्र

नानाजी देशमुख ने 94 वर्ष की अपनी जीवन यात्रा को पूर्ण रूप से समाज और देश को समर्पित किया। उनके व्यक्तित्व से जुड़े अनेक प्रसंगों को कुल छह अध्यायों में वर्णित किया गया है। पुस्तक के आखिर में 'नानाजी का पत्र देश के युवाओं के नाम' युवा वर्ग को प्रेरणा देने वाला है।

पृ. 98; रु. 165.00

nbt.india
एक: सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल :** nro.nbt@nic.in
वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in